दलाल और राष्ट्रीय बुर्जुआ के बारे में

भारत के कम्युनिस्ट क्रांतिकारी आन्दोलन में भारतीय बुर्जुआ वर्ग के चरित्र के बारे में कई विभ्रम मौजूद हैं। इन विभ्रमों की जमीन माओ द्वारा बुर्जआ वर्ग के चरित्र के बारे में प्रस्तुत अवधारणाओं को गलत ढंग से समझने तथा फिर उसे यांत्रिक ढंग से समझने तथा फिर उसे यांत्रिक ढंग से भारतीय बुर्जुआ वर्ग पर आरोपित करने में है। इसी कारण भारतीय शासक बुर्जुआ वर्ग को साम्राज्यवाद का दलाल घोषित कर दिया जाता है तथा इसके बरक्स एक काल्पनिक राष्ट्रीय बुर्जुआ की खोज की जाती है । साथ में जड़सूत्रवादी ढंग से यह भी मान लिया जाता है कि जब तक साम्राज्यवाद का दलाल बुर्जुआ वर्ग सत्तानशीन है तब तक देश में पूंजीवादी संबंधों का विकास नहीं हो सकता या इतना नहीं हो सकता कि देश के उत्पादन संबन्ध मूलतः पूंजीवादी हो जायें। ऐसे में इन लोगों की नजर में क्रांति की मंजिल नवजनवादी क्रांति, क्रांति की धुरी कृषि क्रांति, क्रांति का रास्ता दीर्घकालिक लोकयुद्व, क्रांति की मुख्य लड़ाकू शक्ति किसान, क्रांति का दुश्मन दलाल बुर्जुआ वर्ग तथा क्रांति का दोस्त राष्ट्रीय बुर्जुआ वर्ग बना रहता है (यहां हम क्रांति के अन्य शत्रु या मित्र वर्गों का जिक्र नहीं कर रहे हैं)।

माओ की बुर्जुआ वर्ग के बारे में प्रस्थापनाओं को गलत ढंग से ग्रहण कर और फिर उन्हें भारतीय बुर्जुआ पर आरोपित करने की इस प्रक्रिया में ये लोग अपनी प्रस्थापनाएं प्रस्तुत कर देते हैं जिन्हें संक्षेप में इस तरह प्रस्तुत किया जा सकता है : विकसित साम्राज्यवादी देशों को छोड़कर बाकी समस्त देश उपनिवेश, अर्ध–उपनिवेश या नवउपनिवेश हैं; इन सभी औपनिवेशिक, अर्ध–औपनिवेशिक या नव–औपनिवेशिक देशों का बुर्जुआ वर्ग दो हिस्सों में विभाजित होता है–दलाल बुर्जुआ और राष्ट्रीय बुर्जुआ; दलाल बुर्जुआ साम्राज्यवाद का चाकर, पालतू कुत्ता और सेवक होता है जो साम्राज्यवाद की सेवा करते हुये अपनी सेवा करता है;यही दलाल बुर्जुआ सामंती तत्वों के साथ मिलकर इन देशों में सत्ता में है; साम्राज्यवाद इन सभी देशों में पूंजीवाद के विकास में बाधक है; जब तक यह दलाल बुर्जुआ सत्ता में है इन देशों का पूंजीवादी विकास नहीं हो सकता; इसीलिए इन देशों में क्रांति की मंजिल नव जनवादी क्रांति बनीं रहेगी; चूंकि साम्राज्यवाद राष्ट्रीय बुर्जुआ के विकास में बाधक है इसीलिए यह क्रांति का मित्र होगा जिसे क्रांति के पक्ष में जीत कर लाना है।

ये सभी प्रस्थापनायें माओ द्वारा चीनी बुर्जुआ के बारे में कही गई बातों को जड़सूत्रवादी और यांत्रिक ढंग से ग्रहण कर,उन्हें देश–काल से काट कर बनाई गई हैं। ऊपरी तौर पर ऐसा लगता है कि ये तो वही बातें हैं जो माओ ने कही थीं। लेकिन यह सच नहीं है। ये प्रस्थापनायें द्वन्द्ववाद की आत्मा का निषेध हैं।

इन प्रस्थापनाओं के भारतीय परिस्थितियों से मेल न खाने के कारण इधर कुछ लोगों ने चुपके–चुपके कुछ परिवर्तन करने की कोशिश की है। कुछ लोगों ने यह कहना शुरू किया है कि दलाल बुर्जुआ साम्राज्यवाद का गुलाम नहीं होता, कि दलाल बुर्जुआ अपना मालिक बदल सकता है हालांकि वह बिना मालिक के नहीं रह सकता, कि भारत के कुछ हिस्सों में पूंजीवादी विकास हुआ है। इनमें से कुछ लोग तो और आगे गये हैं और यह कहना शुरु कर दिया है कि भारतीय दलाल बुर्जुआ वर्ग का भारतीय जनता से स्वतंत्र बुनियादी अंतरविरोध बनता है।

इस लेख में इन गलत प्रस्थापनाओं का खंडन करने के लिए हम इस संबंध में माओ द्वारा कही गई लगभग सभी महत्वपूर्ण बातों को प्रस्तुत करेंगे तथा यह दिखायेंगे कि कैसे भारत के कम्युनिस्ट क्रांतिकारी आंदोलन में प्रचलित प्रस्थापनाएं माओ की बातों से मेल नहीं खाती। अंत में हम यह बात भी रखेंगे कि भारतीय बुर्जुआ के बारे में इन लोगों द्वारा कही जाने वाली बातें बेबुनियाद और जड़सूत्रवादी हैं।

I

बुर्जुआ वर्ग के बारे में कोमिंटर्न

लेकिन इसके पहले कि हम दलाल और राष्ट्रीय बुर्जुआ के बारे में माओ द्वारा कही गई बातों पर विचार करें,इस संबंध में कौमिंटर्न द्वारा कही गई बातों पर गौर फरमाना उपयुक्त होगा।

कोमिंटर्न ने अपनी दूसरी कांग्रेस में ही औपनिवेशिक सवाल पर विस्तार से विचार–विमर्श किया और नीति निर्धारित की। इसके प्रणेता लेनिन थे। इसके बाद के तमाम सालों में औपनिवेशिक सवाल पर कोमिंटर्न की नीति मूलतः यही बनी रही।

कोमिंटर्न की दूसरी कांग्रेस में औपनिवेशिक सवाल पर प्रस्तुत अपनी थीसिसों में लेनिन ने कहा कि औपनिवेशिक देशों में राष्ट्रीय मुक्ति के आन्दोलन बुर्जुआ जनवादी आंदोलन हैं और साम्राज्यवाद के खिलाफ लक्षित होने के कारण इन देशों के बुर्जुआ वर्ग की भूमिका प्रगतिशील है। इन आन्दोलनों का कौमिंटर्न को समर्थन करना चाहिए।

एम.एन. राय ने लेनिन की इन थीसिसों के विरोध में अपनी थीसिसें प्रस्तुत की जिनकी मुख्य बात यह थी कि उपनिवेशों में साम्राज्यवाद–विरोधी आंदोलन की दो धाराएं थीं–एक सुधारवादी और दूसरी क्रांतिकारी । कोमिंटर्न को इन दोनों में फर्क करना चाहिए और केवल दूसरे का समर्थन करना चाहिए। इस क्रांतिकारी आंदोलन को भी बुर्जुआ जनवादी आंदोलन न कह कर राष्ट्रीय क्रांतिकारी आंदोलन कहना चाहिए तथा सुधारवादी बुर्जुआ को राष्ट्रीय सुधारवादी कहना चाहिए।

एम.एन. राय की इन थीसिसों को कई संशोधनों के बाद लेनिन की थीसिस के पूरक के रुप में स्वीकार कर लिया गया हालांकि लेनिन ने रेखांकित किया कि राष्ट्रीय क्रांतिकारी आंदोलन का अंतर्य बुर्जुआ जनवादी ही होता है।

इस तरह कौमिंटर्न ने उपनिवेशों और अर्ध–उपनिवेशों के बुर्जुआ वर्ग को एक ही वर्ग के रुप में देखा और उसे परिभाषित करने के लिए राष्ट्रीय सुधारवादी बुर्जुआ नाम दिया। यह राष्ट्रीय सुधारवादी बुर्जुआ साम्राज्यवाद और सामंती तत्वों से जुड़ा हुआ था और इसलिए यह साम्राज्यवाद–विराधी संघर्ष में ढुलमुलपन और समझौतापरस्ती का रुख प्रदर्शित करता था। यह क्रांतिकारी आंदोलन से भयभीत रहता था।

बाद में जब चीन में 1926–27 की घटनाएं हुईं तो कौमिंटर्न ने इन देशों के बुर्जुआ वर्ग में विभाजन को चिन्हित करना शुरु किया। लेकिन कौमिंटर्न द्वारा चिन्हित यह विभाजन लगभग इसी समय और बाद में माओ द्वारा किये गये विभाजन से भिन्न था। कोमिंटर्न ने वित्तीय और व्यापारिक बुर्जुआ को एक ओर रख कर उसे साम्राज्यवाद परस्त बताया तथा इनके बरक्स औद्योगिक बुर्जुआ को रखा। पहला साम्राज्यवाद का सेवक था जबकि दूसरा समझौता परस्त। कौमिंटर्न ने पहले को ही बड़े बुर्जुआ के रुप में और दूसरे को मध्यम बुर्जुआ के रुप में देखा। इन विभाजनों में केवल बड़ा व्यापारिक बुर्जुआ ही दलाल बुर्जुआ के रुप में चिन्हित किया गया था।

''........(चीनी क्रांति) के पहले चरण में आंदोलन की चालक शक्ति राष्ट्रीय बुर्जुआ और बुर्जुआ बुद्धिजीवी थे जो सर्वहारा और निम्न पूंजीपति वर्ग से समर्थन हासिल करते थे। दूसरे चरण में.....सर्वहारा ने किसानों, जो अपने हित में लड़ाकू कार्यवाहियां कर रहे थे,शहरी निम्न पूंजीपति वर्ग और पूंजीवादी बुर्जुआ के एक हिस्से के साथ संश्रय कायम किया। इस समय आंदोलन तीसरे चरण में प्रवेश कर रहा है।....विकास के इस चरण में आंदोलन की बुनियादी शक्ति एक और ज्यादा क्रांतिकारी चरित्र का ब्लाक है–सर्वहारा, किसानों और शहरी निम्न पूंजीपति वर्ग का ब्लाक। इसमें बड़े पूंजीवादी बुर्जुआ के ज्यादातर हिस्से शामिल नहीं हैं। इसका मतलब यह नहीं है कि एक वर्ग के बतौर समग्र बुर्जुआ ही राष्ट्रीय मुक्ति आंदोलन से अलग हो गया है। निम्न बुर्जुआ और मध्यम बुर्जुआ के अलावा बड़े बुर्जुआ की कुछ शक्तियां अभी भी कुछ समय के लिए क्रांति के साथ जा सकती है।'' (Resolution of the Seventh ECCI Plenum on the Chinese situation;The Communist International Documents; Edited byJane Degras, Oxford University Press,1956,Vol-1 पृष्ठ 340–341, सभी अनुवाद हमारे)

''....बड़ा औद्योगिक बुर्जुआ ज्यादा से ज्यादा हिचकिचा रहा है और विदेशी पूंजी को प्रभुत्वकारी भूमिका सौंपते हुए उस के साथ समझौता करने की ओर झुक रहा है...'' (वही , पृष्ठ– 341)

''एक वर्ग के रुप में देशी बुर्जुआ अपेक्षाकृत कम विकसित और कमजोर है। बुर्जुआ वर्ग के आर्थिक रुप से अपेक्षाकृत शक्तिशाली संस्तर (वित्तीय बुर्जुआ और दलाल) विदेशी पूंजीवाद के साथ व्यापारिक और वित्तीय बन्धनों में इस कदर नजदीकी से बंधे हुए हैं कि उन्होंने साम्राज्यवाद– विरोधी संघर्ष में कभी भी कोई हिस्सा नहीं लिया है। औद्योगिक बुर्जुआ राष्ट्रीय क्रांतिकारी आंदोलन के साथ तब तक चलता रहा जब तक इसका चरित्र पूर्णतः बुर्जुआ जनवादी था। लेकिन क्रांति के पहले संकेत के साथ ही वह या तो अलग हो गया या उसमें तोड़–फोड़ करने की कोशिश की।.......'' (वही, पृष्ठ–342)

''इन औपनिवेशिक देशों का राष्ट्रीय बुर्जुआ साम्राज्यवाद के प्रति एक जैसा रुख नहीं अपनाता। एक हिस्सा,खासकर व्यापारिक बुर्जुआ, सीधे–सीधे साम्राज्यवादी पूंजी के हितों की सेवा करता है (तथाकथित दलाल बुर्जुआ)। आमतौर पर वे साम्राज्यवाद के सामंती संश्रयियों व ज्यादा तनख्वाह पाने वाले देशी अधिकारियों की तरह, समूचे राष्ट्रीय आंदोलन का विरोध करने वाले राष्ट्र विरोधी, साम्राज्यवादी दृष्टिकोण पर कमोबेश अड़े रहते हैं। देशी बुर्जुआ के दूसरे हिस्से, खासकर देशी उद्योगों के हितों का प्रतिनिधित्व करने वाले, राष्ट्रीय आंदोलन का समर्थन करते हैं; यह प्रवृत्ति जो ढुलमुलपन का शिकार होती है और समझौतों की ओर लगातार झुकी होती है,राष्ट्रीय सुधारवादी कही जा सकती है।..

''यही औपनिवेशिक बुर्जुआ का सबसे कमजोर बिन्दु है। औपनिवेशिक किसानों पर असहनीय बोझ केवल कृषि क्रांति से समाप्त किया जा सकता है। चीन,भारत और मिस्र के बुर्जुआ अपने तात्कालिक हितों के लिए जमींदारी, सूदखोर पूंजी और आम तौर पर किसान जनता के शोषण से इस तरह जुड़े हुए हैं कि वे न केवल क्रांति का बल्कि प्रत्येक निर्णायक कृषि सुधार का भी विरोध करते है। वे इस बात से डरते हैं, और अकारण ही नहीं, कि कृषि सवाल का साफ सूत्रीकरण भी किसान जनता में क्रांतिकारी जागरण को प्रेरित और त्वरित करेगा। इसीलिये इस अत्यावश्यक सवाल के व्यवहारिक समाधान की ओर सुधारवादी बुर्जुआ नहीं बढ़ सकता। ....साम्राज्यवाद के साथ हर संघर्ष में एक ओर तो वे सिद्धान्तों की राष्ट्रवादी ''दृढ़ता'' का खूब दिखावा करते हैं और दूसरी ओर साम्राज्यवाद के साथ शांतिपूर्ण समझौते की संभावना का भ्रम फैलाते हैं।....'' (' Thesis on The Revolutionary Movement in Colonial and Semi-Colonial Countries', Adopted by Sixth Comintern Congress, वही ,Vol-II पृष्ठ–538)

''...प्रतिक्रांतिकारी ब्लाक दो मुख्य समूहों में बंटता जा रहा है।

''पहले समूह में युद्ध सरदार, सामंती जमींदार और बड़े देशी बुर्जुआ (प्रथमतः,लेकिन केवल ये ही नहीं,दलाल और बैंक मालिक) हैं।...ये सभी देश को विदेशी पूंजी के अधीन लाने में मदद कर रहे हैं।...

''दूसरा समूह राजनीतिक साधनों से एक बुर्जुआ राष्ट्रीय सुधारवादी केंद्र का निर्माण करने के प्रयास को अभिव्यक्त करता है जो चीनी राष्ट्रीय बुर्जुआ के मध्यम हिस्सों के अर्थात औद्योगिक पूंजीपतियों और व्यापारियों के एक हिस्से के हितों का प्रतिनिधित्व करता है।...यह समूह...प्रतिक्रांतिकारी है, मजदूरों और किसानों के क्रांतिकारी आंदोलन का घोर शत्रु है, सोवियत संघ विरोधी है,एक सिरे से समझौतावादी है,साम्राज्यवाद और युद्ध सरदारों के सामने रीढ़ विहीन है।...''(' Letter from the ECCI to the Central Committee of the Communist Party of China', 26 October 1929, Vol.-II, वही, पृष्ठ–86)

उपरोक्त सभी उद्धरणों से साफ है कि कौमिंटर्न सारे बुर्जुआ वर्ग को एक साथ रखकर उन्हें देशी या राष्ट्रीय बुर्जुआ कहता है। इस देशी या राष्ट्रीय बुर्जुआ में बैंकिंग बुर्जुआ है,व्यापारी या दलाल बुर्जुआ है तथा औद्योगिक बुर्जुआ है। पहले दो बड़े बुर्जुआ हैं जबकि तीसरा मध्यम। पहले दो साम्राज्यवाद के सेवक हैं जबकि तीसरा समझौतापरस्त। इस तीसरे को राष्ट्रीय सुधारवादी कहा जा सकता है।

इन उद्धरणों से यह भी स्पष्ट है कि अब राष्ट्रीय सुधारवादी बुर्जुआ में, संपूर्ण बुर्जुआ की नहीं बल्कि केवल मध्यम बुर्जुआ–औद्योगिक बुर्जुआ की गिनती हो रही है।

जैसा कि पहले कहा गया है, कौमिंटर्न के ये सूत्रीकरण चीन में 1926.27 की घटनाओं से पैदा हो रहे थे। इसी समय माओ भी चीनी समाज में विद्यमान वर्गों को सूत्रबद्ध करने का प्रयास कर रहे थे। लेकिन वे जिन नतीजों पर पहुंचे वे कौमिंटर्न के निष्कर्षों से भिन्न थे। उन्होंने भी चीन के बुर्जुआ को दो हिस्सों में बंटा देखा। उन्होंने भी इसे बड़े और मध्यम में बंटा देखा। लेकिन उन्होंने बड़े को दलाल और मध्यम को राष्ट्रीय कहा। इसके साथ ही उन्होंने बड़े या दलाल बुर्जुआ में सभी बड़े बुर्जुआ को रखा चाहे वे वित्तीय बुर्जुआ हों, चाहे व्यापारिक या चाहे औद्योगिक। दलाल बुर्जुआ साम्राज्यवादपरस्त होता है,उसका चाकर होता है जबकि राष्ट्रीय बुर्जुआ ढुल–मुल और समझौतापरस्त।

II

दलाल बुर्जुआ

दलाल बुर्जुआ को परिभाषित करते वक्त माओ ने बताया कि यह ऐसा वर्ग है जिसे साम्राज्यवाद ने पैदा किया है और जो पूर्णतया साम्राज्यवाद पर निर्भर है। साम्राज्यवाद के बिना इसका अस्तित्व संभव नहीं है। लेकिन चूंकि साम्राज्यवाद खुद अलग–अलग साम्राज्यवादी देशों में विभाजित है इसलिए यह दलाल बुर्जुआ भी अलग–अलग हिस्सों में विभाजित होता है। इसके अलग–अलग हिस्से अलग–अलग साम्राज्यवादी देशों से सम्बद्ध होते हैं और उसकी सेवा करते हुए अपनी सेवा करते हैं। वे अपने मालिकों के कहे अनुसार चलते हैं और मालिकों के आपसी झगड़ों में अपने–अपने मालिकों के हिसाब से पक्ष लेते हैं। इस दलाल बुर्जुआ के हित राष्ट्र के हितों के पूर्णतया विपरीत होते हैं।

चीन के संदर्भ में अलग–अलग समय इस दलाल बुर्जुआ के चरित्र के बारे में बताते हुए माओ ने कहा हैः

''जमींदार वर्ग और दलाल पूंजीपति वर्ग। आर्थिक रुप से पिछड़े हुए और अर्ध–औपनिवेशिक चीन में जमींदार वर्ग और दलाल पूंजीपति वर्ग पूरी तरह अंतर्राष्ट्रीय पूंजीपति वर्ग के दुमछल्ले हैं। वे अपने अस्तित्व और विकास के लिए साम्राज्यवाद पर निर्भर रहते हैं। ये वर्ग चीन के सबसे पिछड़े हुए और सबसे प्रतिक्रियावादी उत्पादन संबन्धों का प्रतिनिधित्व करते हैं तथा उसकी उत्पादक शक्तियों के विकास को रोकते हैं। इनका अस्तित्व चीनी क्रांति के उद्देश्यों से बिल्कुल मेल नहीं खाता। विशेषकर बड़े जमींदारों का वर्ग और बड़े दलाल –पूंजीपतियों का वर्ग, ये दोनों हमेशा साम्राज्यवाद का पक्ष लेते हैं और एक अत्यन्त प्रतिक्रांतिकारी गुट के रुप में संगठित हो जाते हैं। इनके राजनीतिक प्रतिनिधि हैं राजसत्तावादी और क्वोमिंतांङ का दक्षिण पक्ष।'' (माओ–त्से–तुंग, 'चीनी समाज में वर्गों का विश्लेषण', संकलित रचनाएं, विदेशी भाषा प्रकाशन गृह, पीकिंग, 1971, ग्रंथ–1, पृष्ठ 4–5)

''बड़े स्थानीय निरंकुश तत्वों व बुरे शरीफजादों, बड़े युद्ध सरदारों, बड़े नौकरशाहों और बड़े दलाल पूंजीपतियों ने तो बहुत पहले से ही अपने मंसूबे बांध रखे हैं। वे पहले से ही यह कहते रहे हैं और अब भी कहते हैं कि क्रांति (वह चाहे कैसी ही क्यों न हो) साम्राज्यवाद की तुलना में अवश्य ही बुरी होगी। उन्होंने गद्दारों का एक खेमा ही बना लिया है। उनके लिए तो किसी विदेशी राज्य के दास बनने या न बनने का प्रश्न ही नहीं उठता,क्योंकि उन्होंने अपनी राष्ट्रीयता की भावना को ही तिलांजली दे दी है और उनके हित साम्राज्यवाद के हितों से अभिन्न रुप से जुड़ चुके हैं। उनका सरगना च्यांग काई शेक ही है। गद्दारों का यह खेमा चीनी जनता का जानी दुश्मन है। इन गद्दारों के बिना जापानी साम्राज्यवाद अपने आक्रमण में इतना नंगा कभी नहीं हो सकता था। ये तो साम्राज्यवाद के पालतू कुत्ते हैं।'' (माओ, 'जापानी साम्रा ज्यवाद विरोधी कार्यनीति के बारे में ', वही,पृष्ठ–261)

''....चीन का बड़े पूंजीपतियों का वर्ग,जो अपने स्वरुप में दलाल किस्म का है,प्रत्यक्ष रुप से साम्राज्यवाद की सेवा करता है और उसके द्वारा पाला–पोसा जाता है। इसलिए चीन का बड़े दलाल –पूंजीपतियों का वर्ग सदा से क्रांति के प्रहार का निशाना रहा है। फिर भी,इस बड़े दलाल पूंजीपतियों के वर्ग के अन्दर भिन्न–भिन्न गुटों की पीठ पर भिन्न–भिन्न साम्राज्यवादी शक्तियों का हाथ रहता है, इसीलिए जब इन शक्तियों के बीच अंतरविरोध तीव्र हो जाएं और जब क्रांति के प्रहार का निशाना मुख्यतया किसी एक खास शक्ति के विरुद्ध साधा जाय, तो बड़े पूंजीपतियों के वे गुट जो अन्य शक्तियों पर आश्रित हैं, उस खास शक्ति के विरुद्ध चलाए गये संघर्ष में एक खास हद तक और एक खास समय के लिए शामिल हो सकते हैं। ऐसे मौकों पर,शत्रु को कमजोर बनाने और अपनी सुरक्षित शक्तियों में वृद्धि करने की गरज से चीनी सर्वहारा वर्ग इन गुटों के साथ मोर्चा बना सकता है और जहां तक सम्भव हो उसे कायम रखना चाहिए बशर्ते कि वह क्रांति के लिए लाभदायक हो।''........ (माओ, '' कम्युनिस्ट '' पत्रिका का परिचय, वही, ग्रंथ–2, पृष्ठ 506–507)

''पूंजीपति वर्ग में बड़े दलाल पूंजीपतियों के वर्ग और राष्ट्रीय पूंजीपति वर्ग के बीच फर्क है।

''बड़े दलाल पूंजीपतियों का वर्ग एक ऐसा वर्ग है जो सीधा साम्राज्यवादी देशों के पूंजीपतियों की सेवा करता है और उन्हीं के टुकड़ों पर पलता है ; देहातों में सामन्ती शक्तियों के साथ उसका अत्यंत घनिष्ठ संबंध होता है। इसलिए चीनी क्रांति के इतिहास में वह कभी भी क्रांति की प्रेरक शक्ति नहीं रहा,बल्कि क्रांति के प्रहार का लक्ष्य रहा है।

"मगर बड़े दलाल पूंजीपतियों के वर्ग के विभिन्न हिस्से विभिन्न साम्राज्यवादी देशों के वफादार हैं, इसलिए जब साम्राज्यवादी देशों के अंतरविरोध बहुत तेज हो जाते हैं और क्रांति के प्रहार का लक्ष्य मुख्य रुप से कोई एक साम्राज्यवादी देश बन जाता है, तो दलाल पूंजीपति वर्ग के लिए,जो दूसरे साम्राज्यवादी ग्रुपों की सेवा कर रहे हैं, किसी हद तक और कुछ समय के लिए तत्कालीन साम्राज्यवाद–विरोधी मोर्चे में शामिल हो जाना संभव होता है। लेकिन ज्योंही उनके आका चीनी क्रांति के खिलाफ हो जाते हैं,उसी क्षण वे भी क्रांति का विरोध करने लगते हैं।" (माओ, 'चीनी क्रांति और चीनी कम्युनिस्ट पार्टी ', वही, ग्रंथ–2, पृष्ठ 563–564)

माओ ने चीन के दलाल बुर्जुआ की उत्पत्ति और उसके आर्थिक आधार का भी वर्णन किया है।

"साम्राज्यवादी ताकतों ने व्यापारिक शहरों से लेकर दूरस्थ दरिद्रताग्रस्त भीतरी इलाकों तक दलाल–पूंजीपतियों और सूदखोर–व्यापारियों द्वारा किये जाने वाले शोषण का जाल सा बिछा दिया और अपनी सेवा में दलाल पूंजीपति वर्ग और सूदखोर–व्यापारी वर्ग पैदा कर लिए,ताकि व्यापक चीनी किसानों तथा जनसमुदाय के दूसरे तबकों का आसानी से शोषण किया जा सके।" (माओ, ' चीनी क्रांति और चीनी कम्युनिस्ट पार्टी ', वही,पृष्ठ–548)

"अपने आक्रमण की जरुरतें पूरी करने के लिए साम्राज्यवाद ने चीन में दलाल–व्यवस्था तथा नौकरशाही पूंजी की सृष्टि की। साम्राज्यवादी आक्रमण ने चीन की सामाजिक अर्थव्यवस्था को प्रोत्साहित किया, उसमें परिवर्तन किये और चीन के राष्ट्रीय उद्योग व राष्ट्रीय पूंजीपति वर्ग के रुप में, और विशेषकर सीधे साम्राज्यवादियों द्वारा संचालित उद्योगों में तथा नौकरशाह पूंजी और राष्ट्रीय पूंजीपति वर्ग द्वारा संचालित उद्योगों में श्रम करने वाले सर्वहारा वर्ग के रुप में अपने विपरीत तत्वों को जन्म दिया।..." (माओ, ' भ्रमजाल को त्याग दो और संघर्ष के लिये तैयार हो जाओ ', वही, ग्रंथ–4, पृष्ठ–726)

"......च्यांङ., सुंङ., खुंङ., और छन इन चार बड़े घरानों ने बीस वर्ष के अपने शासन काल में बेशुमार दौलत बटोर ली है, जिसकी कीमत एक हजार करोड़ से दो हजार करोड़ अमरीकी डालर तक है,तथा उन्होंने देश के समूचे आर्थिक स्रोतों पर अपना इजारा कायम कर लिया है। यह इजारेदार पूंजी राजसत्ता के साथ मिलकर राजकीय इजारेदार पूंजी बन गई है। यह इजारेदार पूंजीवाद विदेशी साम्राज्यवाद,घरेलू जमींदार वर्ग और पुराने किस्म के धनी किसानों के साथ घनिष्ठ संबन्ध कायम करके दलाल, सामंती, राजकीय–इजारेदार पूंजीवाद बन गया है। यह है च्यांङ.–काई–शेक के प्रतिक्रियावादी शासन का आर्थिक आधार। यह राजकीय–इजारेदार पूंजीवाद न सिर्फ मजदूरों और किसानों का उत्पीड़न करता है,बल्कि शहरी निम्न–पूंजीपति वर्ग का उत्पीड़न भी करता है तथा मध्यम पूंजीपति वर्ग को आघात पहुंचाता है। यह राजकीय –इजारेदार पूंजीवाद जापानी–आक्रमण–विरोधी युद्ध के दौरान और जापान के आत्मसमर्पण के बाद अपने विकास की चरम सीमा पर पहुंच गया; इसने नवजनवादी क्रांति के लिए पर्याप्त भौतिक परिस्थितियां पैदा कर दी हैं। यह पूंजी चीन में आम तौर पर नौकरशाह–पूंजी कहलाती है। यह पूंजीपति वर्ग, जो नौकरशाह पूंजीपति वर्ग कहलाता है, चीन के बड़े पूंजीपतियों का वर्ग है। ..." (माओ, 'वर्तमान परिस्थिति और हमारे कार्यभार ', वही, ग्रंथ–4, पृष्ठ 274–275)

"चीन के पास एक आधुनिक उद्योग है जो उसकी अर्थव्यवस्था का लगभग दस प्रतिशत है; यह एक प्रगतिशील बात है,यह प्राचीन काल की स्थिति से भिन्न है।... ...

"चीन का आधुनिक उद्योग,हालांकि उसका उत्पादन मूल्य राष्ट्रीय अर्थ व्यवस्था के कुल उत्पादन मूल्य का केवल दस प्रतिशत ही है,बहुत अधिक केन्द्रित रुप में है; पूंजी का अधिकांश भाग तथा मुख्य भाग साम्राज्यवादियों व उनके गुर्गों–चीनी नौकरशाह –पूंजीपतियों– के हाथों में केंद्रित है।"...(माओ, ' चीनी कम्युनिस्ट पार्टी की सातवीं केन्द्रीय कमेटी के दूसरे पूर्ण अधिवेशन में रिपोर्ट ', वही, ग्रंथ–4 पृष्ठ 620– 621)

उपरोक्त उद्धरण यह दिखाते हैं कि चीन का दलाल पूंजीपति वर्ग केवल बैंकिंग या व्यापारी पूंजीपति वर्ग नहीं था बल्कि इसमें औद्योगिक पूंजीपति वर्ग भी शामिल थे। ये सभी साम्राज्यवाद के प्रभाव और उसकी छत्रछाया में पैदा हुये थे और साम्राज्यवाद के साथ उनका घनिष्ठ संबन्ध था। यह संबध केवल वित्तीय लेन–देन का नहीं था और न ही केवल साम्राज्यवादियों का माल बेचने और कमिशन एजेंट का था। यह औद्योगिक क्षेत्र में पूंजी निवेश का भी था। यानि चीन के तमाम बड़े पूंजीपति वित्तीय,व्यापारिक व औद्योगिक आपस में गुंथे हुए थे और वे मिलकर दलाल पूंजीपति का निर्माण करते थे। ये सभी इजारेदार थे।

यह सब साम्राज्यवाद यानि इजारेदारियों के युग में हो रहा था। विदेशी इजारेदारियां घरेलू इजारेदारी को ही जन्म देगी। इन घरेलू इजारेदारों की साम्राज्यवाद पर निर्भरता ही वह चीज थी जिसने इनके हितों को साम्राज्यवाद के हितों के मातहत कर रखा था। इसी कारण से ये घरेलू इजारेदार साम्राज्यवाद के चाकर और उसके पालतू कुत्ते बने हुए थे।

अर्ध–औपनिवेशिक स्थिति के कारण चीन में एक साथ कई साम्राज्यवादी शक्तियों का सक्रिय होना सम्भव था। अलग–अलग साम्राज्यवादी देशों की इजारेदारियां चीन में कार्य कर सकती थी और समूचे चीन को आर्थिक तौर पर बांट सकती थीं। इन अलग–अलग साम्राज्यवादी इजारेदारियों से संबद्ध अलग–अलग घरेलू पूंजीपति स्वाभाविक ही उनके साथ बंध जाते। इनका भाग्य अलग–अलग साम्राज्यवादियों के चीन में भाग्य से बंध जाता।

इससे स्पष्ट है कि चीन के दलाल पूंजीपति वर्ग का साम्राज्यवाद का दलाल होने का सीधा आर्थिक आधार था। इसी से उसका राजनीतिक व्यवहार यानि क्रांति में उसकी भूमिका निर्धारित होती थी।

इस दलाल बुर्जुआ के सामंती वर्ग से भी घनिष्ठ संबन्ध थे इसीलिए यह कृषि क्रांति का दुश्मन था। इस तरह दलाल बुर्जुआ और सामंती वर्ग दोनों मिलकर चीन में साम्राज्यवाद का सामाजिक अवलम्ब बनते थे।

III

राष्ट्रीय बुर्जुआ

दलाल बुर्जुआ के बरक्स माओ ने चीन के राष्ट्रीय बुर्जुआ की अवधारणा रखी। यह राष्ट्रीय बुर्जुआ दलाल बुर्जुआ से भिन्न था। यह राष्ट्रीय था क्योंकि यह राष्ट्रीय मुक्ति आंदोलन का ढुलमुल दोस्त था। यह या ज्यादा सही कहें तो इसका वाम पक्ष राष्ट्रीय क्रांतिकारी आंदोलन का सहयोगी बन सकता था या कम से कम तटस्थ रह सकता था। इस तरह यह जनता की शक्तियों में आता था हालांकि यह इसका कोर नहीं बनता था।

भारत के कम्युनिस्ट क्रांतिकारी आंदोलन में व्याप्त मान्यताओं के विपरीत माओ का साफ कहना था कि इस राष्ट्रीय बुर्जुआ के साम्राज्यवाद और खासकर देहाती सामंती वर्ग से कुछ सम्बन्ध हैं इसीलिए यह क्रांति में समझौतापरस्ती और ढुलमुलपन का रुख अपनाता है। इसमें भी दलाल होने के कुछ गुण मौजूद हैं। यानि यह 'शुद्ध राष्ट्रवादी' नहीं है।

यह राष्ट्रीय बुर्जुआ राष्ट्रीय मुक्ति आंदोलन का नेतृत्व हथियाना चाहता है लेकिन जब मजदूर और किसान उठ खड़े होते हैं तो यह क्रांति से भयभीत होकर समझौतापरस्ती या यहां तक कि गद्दारी पर उतर आता है। परन्तु साथ ही जब क्रांतिकारी शक्तियां निर्णायक रुप से विजयी होने लगती हैं तो यह अपना कोई अन्य भविष्य न बचा देख क्रांति के भविष्य को अनमने से ही सही स्वीकार करने लगता है।

इस तरह राष्ट्रीय बुर्जुआ का चरित्र विसंगतियों और ढुलमुलपन से निर्मित होता है जिसके मूल में होती है साम्राज्यवाद और सामंती तत्वों से उसका सम्बन्ध और उसकी जन्मजात कमजोरी।

"मध्यम पूंजीपति वर्ग। यह वर्ग शहरों और देहातों में चीन के पूंजीवादी उत्पादन संबन्धों का प्रतिनिधित्व करता है। मध्यम पूंजीपति वर्ग का अर्थ मुख्यतः राष्ट्रीय पूंजीपति वर्ग से है। यह चीनी क्रांति के प्रति असंगत रुख अपनाता है ; जब वह विदेशी पूंजी की मार और युद्ध सरदारों के उत्पीड़न से त्रस्त होता है, तो उसे क्रांति की जरुरत महसूस होती है और वह साम्राज्यवाद और युद्ध सरदारों के खिलाफ क्रांतिकारी आंदोलन का पक्षपोषण करता है। लेकिन जब देश में सर्वहारा वर्ग क्रांति में जुझारुपन के साथ हिस्सा लेता है और देश के बाहर अंतर्राष्ट्रीय सर्वहारा वर्ग इस क्रांति को सक्रिय सहयोग देता है, जिससे उसे यह महसूस होने लगता है कि एक वर्ग के रुप में आगे बढ़कर बड़े पूंजीपतियों के वर्ग के स्तर पर पहुंचने की उसकी इच्छा के विफल होने का खतरा पैदा हो गया है,तो वह क्रांति के प्रति संदेह का रुख अपना लेता है। राजनीतिक दृष्टि से वह एक ही वर्ग, अर्थात राष्ट्रीय पूंजीपति वर्ग के शासन में राज्यसत्ता कायम करने का पक्षपोषण करता है।..... लेकिन राष्ट्रीय पूंजीपति वर्ग के शासन में राज्यसत्ता कायम करने का उसका लक्ष्य अव्यवहारिक है,क्योंकि दुनिया की मौजूदा परिस्थिति ऐसी है कि क्रांति और प्रतिक्रांति, इन दोनों बड़ी ताकतों के बीच अंतिम संघर्ष छिड़ा हुआ है।...मध्यवर्ती वर्ग निस्संदेह

जल्दी ही टूट जायेंगे, कुछ हिस्से बाएं मुड़ेंगे और क्रांति की पांतों में शामिल हो जायेंगे तथा दूसरे हिस्से दांये मुड़ेंगे और प्रतिक्रांति की पातों में शामिल हो जायेंगे।'' (माओ, ' चीनी क्रांति में वर्गों का विश्लेषण ',वही ,ग्रंथ–1, पृष्ठ 5–6)

''राष्ट्रीय पूंजीपति वर्ग की समस्या पेचीदा है।...राष्ट्रीय पूंजीपति वर्ग न तो जमींदार वर्ग की तरह है और न दलाल पूंजीपति वर्ग की तरह;उनमें अन्तर है। ***राष्ट्रीय पूंजीपति वर्ग जमींदार वर्ग से कम सामंती और दलाल पूंजीपति वर्ग से कम दलाल है। राष्ट्रीय पूंजीपति वर्ग का एक भाग विदेशी पूंजी और चीन के भूस्वामित्व से ज्यादा संबन्ध रखता है।*** *यह भाग राष्ट्रीय पूंजीपति वर्ग का दक्षिण पक्ष है। फिलहाल, हम इस बात पर विचार नहीं करेंगे कि यह भाग बदल सकता है या नहीं। समस्या इसके उन भागों की है जिनके इस प्रकार के संबन्ध हैं ही नहीं,* ***या अपेक्षाकृत कम हैं****। हमारा विचार है कि नयी परिस्थिति में जबकि चीन को उपनिवेश बना दिये जाने का खतरा मौजूद है,राष्ट्रीय पूंजीपति वर्ग के इन भागों का रुख बदल सकता है। यह परिवर्तन उसके ढुलमुल होने में जाहिर होता है। एक ओर तो उन्हें साम्राज्यवाद नापसंद है और दूसरी ओर वे मुकम्मिल क्रांति से भी डरते हैं। वे इन दोनों स्थितियों के बीच डांवाडोल रहते हैं।...हमारा विचार है कि मौजूदा परिस्थिति में राष्ट्रीय पूंजीपति वर्ग का रुख बदल सकता है। यह परिवर्तन किस हद तक होगा?इसमें आम विशेषता ढुलमुलपन ही है। लेकिन संघर्ष की कुछ विशेष मंजिलों में राष्ट्रीय पूंजीपति वर्ग का एक भाग (वाम पक्ष) संघर्ष में भाग ले सकता है और दूसरा भाग ढुलमुल की स्थिति से आगे बढ़कर तटस्थ हो सकता है।....*

''......एक अर्ध–उपनिवेश की राजनीति और अर्थव्यवस्था की एक मुख्य विशेषता होती है उसके राष्ट्रीय पूंजीपति वर्ग की कमजोरी। यही कारण है कि साम्राज्यवाद इस वर्ग पर सवारी गांठने की जुर्रत करता है और इसी वजह से इस वर्ग की एक विशेषता यह है कि वह साम्राज्यवाद को नापसंद करता है। बेशक, इनकार करने के बजाय हम इस बात को पूरी तरह स्वीकार करते हैं कि उसकी इस कमजोरी के कारण ही साम्राज्यवाद,जमींदार वर्ग और दलाल पूंजीपति वर्ग के लोग ***घूस के रुप में कुछ अस्थाई लाभ देकर इस वर्ग को अपनी ओर खींच सकते हैं****; तथा इसी वजह से इस वर्ग में क्रांतिकारी पूर्णता का अभाव होता है।....''* (माओ, ' जापानी–साम्राज्यवाद– विरोधी कार्यनीति के बारे में ', वही, ग्रंथ 1, पृष्ठ 261–266, जोर हमारा)

''(1) चीन का राष्ट्रीय पूंजीपति वर्ग साम्राज्यवाद और सामंती युद्ध–सरदारों के खिलाफ संघर्ष में कुछ खास मौकों पर और एक खास हद तक भाग लेगा,क्योंकि चीन में विदेशी उत्पीड़न सबसे बड़ा उत्पीड़न है। इसलिए ऐसे मौकों पर, सर्वहारा वर्ग को राष्ट्रीय पूंजीपति वर्ग के साथ संयुक्त मोर्चा कायम करना चाहिए और जहां तक संभव हो उसे कायम रखना चाहिए। (2) अन्य ऐतिहासिक परिस्थितियों में,चीन का राष्ट्रीय पूंजीपति वर्ग अपनी आर्थिक और राजनीतिक क्षीणता के कारण डांवाडोल होगा और विश्वासघात करेगा। इसलिए चीन के क्रांतिकारी संयुक्त मोर्चे की बनावट सदा एक सी नहीं रहेगी, बल्कि परिवर्तनशील होगी। हो सकता है कि किसी समय राष्ट्रीय पूंजीपति वर्ग उसमें शामिल हो जाय और किसी समय नहीं भी हो।...'' (माओ, ''कम्युनिस्ट'' पत्रिका का परिचय, वही, ग्रंथ –2, पृष्ठ–506)

''राष्ट्रीय पूंजीपति वर्ग एक दुरंगे चरित्र वाला वर्ग है।

''वह एक ओर तो साम्राज्यवाद से उत्पीड़ित है और सामंतवाद की बेड़ियों में जकड़ा हुआ है, इसलिए इन दोनों से इसका अंतरविरोध है। इस मायने में वह क्रांतिकारी शक्तियों का एक हिस्सा है। चीनी क्रांति के इतिहास में उसने साम्राज्यवाद और नौकरशाहों व युद्ध–सरदारों की सरकार के खिलाफ लड़ने में किसी हद तक उत्साह दिखाया है।

''लेकिन दूसरी ओर उसमें साम्राज्यवाद व सामंतवाद का मुकम्मिल विरोध करने के साहस का अभाव है, ***क्योंकि वह आर्थिक व राजनीतिक दृष्टि से कमजोर है और साम्राज्यवाद और सामंतवाद के साथ अपने आर्थिक संबन्धों को उसने अब भी पूरी तरह नहीं तोड़ा है****। जब जनता की क्रांतिकारी शक्तियां विकसित होकर मजबूत बन जाती हैं,तो यह बात और स्पष्ट रुप से सामने आ जाती हैं।*

''राष्ट्रीय पूंजीपति वर्ग के इस दुरंगे चरित्र से यह नतीजा निकलता है कि किसी समय और किसी हद तक यह साम्राज्यवाद के खिलाफ और नौकरशाहों व युद्ध–सरदारों की सरकार के खिलाफ क्रांति में भाग ले सकता है और क्रांतिकारी शक्तियों का एक हिस्सा बन सकता है;लेकिन किसी समय इसके बड़े दलाल पूंजीपतियों के वर्ग का अनुयाई बनने और प्रतिक्रांति में उसका सहअपराधी बनने का खतरा भी रहता है।

''चीन के राष्ट्रीय पूंजीपति वर्ग का,जो मुख्यतया मध्यम पूंजीपति वर्ग है, राजनीतिक सत्ता पर वास्तविक अधिकार कभी नहीं रहा है...'' (माओ, ' चीनी क्रांति और चीनी कम्युनिस्ट पार्टी ',वही, ग्रंथ–2, पृष्ठ–565, जोर हमारा)

"... चीन एक औपनिवेशिक और अर्ध–औपनिवेशिक देश है और दूसरों के आक्रमण का शिकार है, इसलिए उसके राष्ट्रीय पूंजीपति वर्ग में कुछ खास अवधियों में और एक खास हद तक क्रांतिकारी गुण मौजूद रहता है ।...

"लेकिन,साथ ही,एक औपनिवेशिक और अर्ध–औपनिवेशिक देश का पूंजीपति वर्ग होने के कारण और इसलिए आर्थिक व राजनैतिक दृष्टि से अत्यधिक कमजोर होने के कारण,चीन के राष्ट्रीय पूंजीपति वर्ग की एक और खासियत है, अर्थात क्रांति के शत्रुओं के साथ सुलह–समझौते करने की प्रवृत्ति। क्रांति में भाग लेते समय भी वह साम्राज्यवाद के साथ पूरी तरह संबंध विच्छेद करने के लिए अनिच्छुक रहता है, ***इसके अलावा देहाती क्षेत्रों में लगान के जरिए किये जाने वाले शोषण के साथ उसका निकट संबन्ध होता है ; इस प्रकार वह न तो साम्राज्यवाद को पूरी तरह उखाड़ फेंकने का इच्छुक होता है और न उसमें समर्थ ही, सामंती शक्तियों को पूरी तरह उखाड़ फेंकना तो दरकिनार।*** *अतएव चीन की पूंजीवादी–जनवादी क्रांति की दोनों बुनियादी समस्याओं अथवा दोनों कार्यों में से किसी एक को भी राष्ट्रीय पूंजीपति वर्ग द्वारा हल अथवा पूरा नहीं किया जा सकता।....."* (माओ, ' नवजनवाद के बारे में ', वही, ग्रंथ–2, पृष्ठ 618–619, जोर हमारा)

"......राष्ट्रीय पूंजीपति वर्ग एक ढुलमुल वर्ग है– वह भी "जमीन जोतने वालों की" की मांग को मंजूर करता है क्योंकि उसे बाजारों की जरुरत है, ***लेकिन उस वर्ग के भी बहुत से लोग उस नारे में डरते हैं। क्योंकि इनमें बहुत से लोगों का भूमि सम्पत्ति से संबंध है।..."*** (माओ, ' मिली जुली सरकार के बारे में ', वही, ग्रंथ–3, पृष्ठ–448, जोर हमारा)

"राष्ट्रीय पूंजीपति वर्ग में जो थोड़े से दक्षिणपंथी लोग अपने को साम्राज्यवाद,सामंतवाद और नौकरशाह–पूंजीवाद के साथ जोड़ते हैं और जनता की जनवादी क्रांति का विरोध करते हैं वे भी क्रांति के शत्रु ही हैं, जबकि राष्ट्रीय पूंजीपति वर्ग में जो वामपंथी लोग अपने को मेहनतकश जनता के साथ जोड़ते हैं और प्रतिक्रियावादियों का विरोध करते हैं, वे भी क्रांतिकारी ही हैं...। लेकिन न तो पहले प्रकार के लोग शत्रु पक्ष का मुख्य संघटक तत्व हैं और न ही दूसरे प्रकार के लोग क्रांतिकारी पक्ष का मुख्य संघटक हैं,और इनमें से कोई भी क्रांति का स्वरुप निर्धारित करने वाली शक्ति नहीं हैं। राष्ट्रीय पूंजीपति वर्ग एक ऐसा वर्ग है जो राजनीतिक रुप से बहुत ही कमजोर और डांवाडोल है।....वर्तमान मंजिल में राष्ट्रीय पूंजीपति वर्ग की बहुसंख्या ऐसी है जिसके मन में अमरीका और च्यांग–काई–शेक के प्रति घृणा का भाव बढ़ता जा रहा है, उस वर्ग के वामपंथी लोग अपने को कम्युनिस्ट पार्टी के साथ और दक्षिणपंथी लोग अपने को क्वोमिंताड़ के साथ जोड़ते हैं, जबकि मध्यवर्ती तत्व दोनों पार्टियों के प्रति हिचकिचाहट भरा, हवा का रुख भांपने वाला रवैया अपनाते हैं। ऐसी परिस्थिति में राष्ट्रीय पूंजीपति वर्ग की बहुसंख्या को अपनी ओर मिलाना और उसकी अल्पसंख्या को अलगाव की स्थिति मे डाल देना हमारे लिए जरूरी और मुमकिन हो गया है।..." (माओ, ' राष्ट्रीय पूंजीपति वर्ग और जागृत शरीफजादे के सवाल के बारे में ', वही, ग्रंथ–4, पृष्ठ 341–343)

भारत के कम्युनिस्ट क्रांतिकारी आंदोलन में राष्ट्रीय बुर्जुआ के चरित्र के बारे मे जो सोच मौजूद है उसका मतलब कुछ यह निकलता है कि राष्ट्रीय बुर्जुआ के साम्राज्यवाद और सामंतवाद से कोई सम्बन्ध नहीं होते। वह क्रांति में यदि ढुलमुल होता है तो महज इस कारण से कि वह कमजोर है। यहां ढुलमुल होने का यह अर्थ लगाया जाता है कि वह ढुलमुल तरीके से क्रांति के साथ चलता रहेगा। वह क्रांति के साथ गद्दारी कर शत्रु खेमे में भी जा सकता है, यह भाव इस ढुलमुलपन में नहीं होता।

इसके विपरीत उपरोक्त उद्धरणों से स्पष्ट है कि राष्ट्रीय बुर्जुआ न केवल कमजोर होता है बल्कि उसके साम्राज्यवाद और सामंतवाद दोनों से आर्थिक संबन्ध होते हैं। वह दलाल बुर्जुआ से कम दलाल और जमींदार वर्ग से कम सामंती होता है। इसके कुछ हिस्सों के साम्राज्यवाद व सामंतवाद से कम संबंध होते हैं तो कुछ के ज्यादा। लेकिन वे होते हैं। इसीलिए वह साम्राज्यवाद और सामंतवाद के खिलाफ दृढ़ता से नहीं लड़ पाता तथा लगातार डांवाडोल होता रहता है और यहां तक कि शत्रुओं के खेमें में भी चला जाता है। इस तरह उसके ढुलमुलपन का निश्चित आर्थिक आधार है।

इन उद्धरणों से यह भी स्पष्ट है कि माओ राष्ट्रीय बुर्जुआ को भी समांग वर्ग नहीं मानते। वह उसे भी बंटा हुआ देखते हैं। यह नहीं, यह बंटवारा और अलग–अलग हिस्सों की भूमिका परिस्थिति के साथ बदलती रहती है। एक जगह माओ कहते है कि राष्ट्रीय बुर्जुआ वर्ग दो हिस्सों में बंट जायेगा –एक क्रांति की पांतों में शामिल हो जायेगा और दूसरा प्रतिक्रांति की (1926)। दूसरी जगह माओ कहते है कि राष्ट्रीय बुर्जुआ के दो हिस्सों में से एक हिस्सा कुछ विशेष मंजिल में संघर्ष में भाग ले सकता है जबकि दूसरा हिस्सा ढुलमुलपन की स्थिति से आगे बढ़कर तटस्थ हो सकता है (1935)। तीसरी जगह माओ कहते है राष्ट्रीय बुर्जुआ के तीन हिस्से है – एक क्रांति के साथ है,दूसरा क्रांति के खिलाफ तथा तीसरा तटस्थ (1948)। ये तीनों चीनी क्रांति के तीन अलग–अलग दौरों के सूत्रीकरण हैं। माओ के इस गहन विश्लेषण के बरक्स हमारे क्रांतिकारी आंदोलन में राष्ट्रीय बुर्जुआ को एक समांग वर्ग मानकर उसे हमेशा क्रांति के ढुलमुल दोस्त के रुप में प्रस्तुत किया जाता है। यहां तक कि उसके बारे में कुछ कड़वी बातें कहना भी गुनाह माना जाता है।

माओ द्वारा चीन के दलाल और राष्ट्रीय बुर्जुआ के चरित्र के बारे मे कही गई बातों को यदि आमने–सामने रखा जाय तो वे कुछ यूं बनती है; दलाल बुर्जुआ इजारेदार पूंजीपति वर्ग है, बड़ा पूंजीपति वर्ग है जबकि राष्ट्रीय बुर्जुआ मध्यम पूंजीपति वर्ग है। दलाल बुर्जुआ साम्राज्यवाद का पुच्छल्ला है,उसका पालतू कुत्ता और सेवक होता है जबकि राष्ट्रीय बुर्जुआ इससे कम दलाल होता है। दलाल बुर्जुआ अपने अस्तित्व और विकास के लिए साम्राज्यवाद पर निर्भर होता है और साम्राज्यवाद द्वारा पाला–पोसा जाता है जबकि राष्ट्रीय बुर्जुआ के साम्राज्यवाद से सम्बन्ध होने के बावजूद साम्राज्यवाद उस पर सवारी गांठता है,उसे उत्पीड़ित करता है। दलाल बुर्जुआ के हित साम्राज्यवाद से अभिन्न होते है जबकि राष्ट्रीय बुर्जुआ का साम्रज्यवाद से अंतर्विरोध बनता है हालांकि यह उसे उखाड़ फेंक नहीं सकता। दलाल बुर्जुआ (गुटों के हिसाब से) हमेशा साम्राज्यवाद का पक्ष लेता है जबकि राष्ट्रीय बुर्जुआ साम्राज्यवाद का विरोध करते हुए भी समझौते के लिए तैयार रहता है तथा गद्दारी तक भी चला जाता है। दलाल बुर्जुआ के सामंती शक्तियों से घनिष्ठ सम्बन्ध होते हैं जबकि राष्ट्रीय बुर्जुआ के उससे कम सम्बन्ध होते हैं और वह सामंतवाद से उत्पीड़ित भी होता है। दलाल बुर्जुआ सबसे पिछड़े हुए उत्पादन सम्बंधों का प्रतिनिधि है जबकि राष्ट्रीय बुर्जुआ पूंजीवादी उत्पादन संबंधों का प्रतिनिधि। दलाल बुर्जुआ उत्पादन शक्तियों के विकास को रोकता है जबकि राष्ट्रीय बुर्जुआ की इनके विकास में रुचि है। दलाल बुर्जुआ के हित क्रांति के उद्देश्यों के बिल्कुल विपरीत हैं जबकि राष्ट्रीय बुर्जुआ का क्रांति के प्रति रुख, असंगत, ढुलमुलपन वाला या यहां तक कि क्रांति से गद्दारी कर प्रतिक्रांति का हिस्सा बन जाने वाला भी होता है।

इस आमने–सामने के प्रस्तुतीकरण से यह बात और ज्यादा साफ होकर उभरती है कि राष्ट्रीय बुर्जुआ के बारे में भारत के कम्युनिस्ट क्रांतिकारियों की अवधारणा किस कदर गलत है। यह उसके प्रति अजीबोगरीब मोह से ग्रस्त होती है।

IV

क्या दलाल बुर्जुआ मालिक बदल सकता है?

माओ द्वारा चीनी बुर्जुआ के चरित्र के बारे में प्रस्तुत की इन अवधारणाओं को जब जड़सूत्र बनाकर हमारे देश के बुर्जुआ वर्ग पर लागू करने का हमारे देश के कम्युनिस्ट क्रांतिकारियों द्वारा प्रयास किया गया तो अनेक कठिनाइयां पैदा हो गई। लेकिन ज्यादातर लोगों ने जड़सूत्रों से पैदा होने वाली कठिनाइयों की परवाह नहीं की और यथार्थ से आंख मूंदकर व असुविधाजनक तथ्यों से नजरें चुराकर भारतीय बुर्जुआ के बारे में शब्दशः वही बातें दुहराने लगे जो माओ ने चीनी बुर्जुआ के बारे में कही थीं।

परन्तु कुछ लोग इतने ढीठ नहीं बन सके और उन्होंने भारतीय यथार्थ को जड़सूत्रों में समाहित करने की कोशिश की। ऐसा करने के लिए उन्होंने यथार्थ के कुछ हिस्सों को संज्ञान में लिया और फिर सिद्ध करने का प्रयास करने लगे कि जड़सूत्र उनका स्पष्टीकरण कर देते हैं। लेकिन ऐसा करते हुए वे माओ द्वारा प्रस्तुत किये गये सूत्रीकरणों के वह अर्थ बताने लगे जो माओ द्वारा अभिप्रेत ही नहीं थे। उन्होंने सूत्र बदलने के बदले सूत्रों के अर्थ ही बदल दिये लेकिन साथ ही यह भी कहते रहे कि माओ द्वारा प्रस्तुत सूत्रों के यही अर्थ हैं।

इन लोगों ने यह कहा कि दलाल बुर्जुआ का यह मतलब नहीं है कि यह साम्राज्यवाद का गुलाम होता है, कि इसकी अपनी स्वायत्तता होती है और इसीलिए यह अपना मालिक बदल सकता है। बस यह बिना किसी साम्राज्यवादी मालिक के नहीं रह सकता है क्योंकि इसका अस्तित्व साम्राज्यवाद पर निर्भर है। इसीलिए यह एक मालिक को छोड़कर दूसरे को पकड़ लेता है।

निश्चित ही, ये लोग इन बातों को इसी तरह साफ–साफ सूत्रित नहीं करते परन्तु भारतीय बुर्जुआ के बारे में जो यह कहते हैं, उसका मतलब यही निकलता है। इन्हीं बातों को आगे बढ़ाते हुए इनमें से कुछ लोग भारतीय दलाल बुर्जुआ शासक वर्ग और भारतीय जनता के बीच के अंतर्विरोध को एक स्वतंत्र और भारतीय समाज का बुनियादी अंतर्विरोध बताने लगे हैं।

सूत्रों का अर्थ बदलना या पुराने सूत्रों में नये अर्थ भरना बुरी बात नहीं है। बुरी बात है ऐसा करते हुए यह जताने का प्रयास करना कि पुराने सूत्रों का यही अर्थ है। यदि कोई यह कहे कि भारतीय शासक बुर्जुआ वर्ग का चरित्र दलाल होते हुए भी इसमें अमुक–अमुक विशेषताएं भी हैं या यह कि यह दलाल चीन से भिन्न किस्म का दलाल है तो शायद किसी को आपत्ति नहीं होगी। आपत्ति तब होती है जब इस सबको माओ के सूत्रों में समाहित बताया जाता है। यह माओ के सूत्रों का प्रच्छन्न संशोधन है, यानि सूत्र वही रखते हुए उसका अर्थ बदल दो।

परन्तु इनके साथ परेशानी यह है कि यदि वे यह कह दें कि सूत्रों के अर्थ उन्होंने बदले हैं तो माओ–विचारधारा की उनकी समस्त अवधारणा धाराशाई हो जाती है। तब उन्हें मानना पड़ेगा कि नवजनवादी क्रांति का कार्यक्रम माओ–विचारधारा का हिस्सा नहीं है,कि इन देशों का बुर्जुआ साम्राज्यवाद से स्वतंत्र होकर सत्तानशीन हो सकता है, कि वह अपने यहां पूंजीवादी उत्पादन संबंधों का विकास कर सकता है, कि बिना साम्राज्यवाद–विरोधी नवजनवादी क्रांति के भी ,सुधारवाद के तरीके से भी समाज वहां पहुंच जाय जहां वह समाजवादी क्रांति की मंजिल में प्रवेश कर जाय। लेकिन ये सारे निष्कर्ष उनकी तथाकथित माओ–विचारधारा और जड़सूत्रों के खिलाफ चले जायेंगे इसलिए वे सूत्रों के प्रच्छन्न संशोधन तक सीमित रहते हैं।

आइये, देखें कि क्या माओ की दलाल बुर्जुआ की अवधारणा में ऐसी गुंजाइश है कि वह अपने मालिक बदल ले। ऐसी गुंजाइश होती तो माओ ने उसे अवश्य चिन्हित किया होता। उपरोक्त सभी उद्धरणों में हम पाते हैं कि दलाल बुर्जुआ के बारे में माओ ऐसा कुछ भी संकेत नहीं देते।

लेकिन हो सकता है कि माओ आम तौर पर यह चिन्हित करने से चूक गये हों (हालांकि माओ जैसे बेमिसाल द्वंद्ववादी के लिए यह असंभव है)। यदि ऐसा होता तो वे उसे तब जरुर चिन्हित करते जब इसकी संभावना सबसे ज्यादा पैदा हुई यानि जापानी आक्रमण के समय। जापान ने चीन को उपनिवेश बना लेने के लिए 1931 में अपना आक्रमण शुरू किया और 1937 आते–आते वह चीन के काफी भू–भाग पर काबिज हो गया। ऐसे में यह संभावना पैदा हुई कि चीन के दलाल पूंजीपति वर्ग जो पहले अमेरिका या ब्रिटेन इत्यादि के दलाल थे वे उनका साथ छोड़कर जापानी साम्राज्यवादियों का दलाल बनना शुरू कर देते। यह बड़ा तार्किक सा दीखता है। लेकिन ऐसा हुआ नहीं। इसके बदले अमेरीका व ब्रिटेन परस्त दलाल बुर्जुआ ने जापानी आक्रमण का प्रतिरोध करना शुरू कर दिया। निश्चित ही उनका यह प्रतिरोध सुलह–समझौते से भरपूर था लेकिन उन्होंने पाला बदलने का कभी संकेत नहीं दिया। अमरीका व ब्रिटिश साम्राज्यवाद परस्त दलाल बुर्जुआ वर्ग अपने मालिकों के निर्देश पर और उनके हितों के अनुरूप जापानी साम्राज्यवादियों का प्रतिरोध करता रहा।

इस संबंध में कुछ उद्धरण बात को स्पष्ट कर देंगे:

''भारी उथल–पुथल के दौर में चीन के जमींदार वर्ग और पूंजीपति वर्ग के रूख का आम विश्लेषण करते समय एक अन्य पहलू की ओर भी संकेत करना चाहिए और वह यह कि जमींदार वर्ग व दलाल पूंजीपति वर्ग के खेमे में पूर्ण एकता नहीं है। इसका कारण अर्ध–उपनिवेश की परिस्थिति हैं, यानि एक ऐसी परिस्थिति जिसमें बहुत सी साम्राज्यवादी ताकतें चीन पर अधिकार करने के लिए होड़ कर रही हैं। जब संघर्ष जापानी साम्राज्यवाद के खिलाफ चल रहा हो,तो अमेरिका या ब्रिटेन के पालतू कुत्ते अपने मालिकों की उंगलियों पर नाचते हुए जापानी साम्राज्यवादियों और उनके पालतू कुत्तों के खिलाफ प्रच्छन्न या खुला संघर्ष चला सकते हैं। अब से पहले भी कुत्तों की ऐसी बहुत सी लड़ाइयां हो चुकी हैं...'' (माओ, ' जापानी–साम्राज्यवाद–विरोधी युद्ध के बारे में ', वही, ग्रंथ–1, पृष्ठ–267)

'' मगर बड़े दलाल–पूंजीपतियों के वर्ग के विभिन्न हिस्से विभिन्न साम्राज्यवादी देशों के वफादार हैं,इसलिए जब साम्राज्यवादी देशों के आपसी अंतरविरोध बहुत तेज हो जाते हैं और क्रांति के प्रहार का लक्ष्य मुख्य रूप से कोई एक साम्राज्यवादी देश बन जाता है,तो दलाल पूंजीपति वर्ग के उन हिस्सों के लिए जो दूसरे साम्राज्यवादी ग्रुपों की सेवा कर रहे हैं, किसी हद तक और कुछ समय के लिए तात्कालीन साम्राज्यवाद–विरोधी मोर्चे में शामिल हो जाना संभव हो जाता है। लेकिन ज्यों ही उनके आका चीनी क्रांति के खिलाफ हो जाते हैं,उसी क्षण वे भी क्रांति का विरोध करने लगते हैं।

''जापानी–आक्रमण–विरोधी युद्ध में बड़े पूंजीपतियों के वर्ग का जापान –परस्त हिस्सा (आत्म समर्पणवादी)या तो आत्मसर्मपण कर चुका है या आत्मसमर्पण की तैयारी कर रहा है। बड़े पूंजीपतियों के वर्ग के यूरोप–परस्त और अमरीका–परस्त हिस्से (कट्टरतावादी) अभी तक जापान विरोधी खेमे में होते हुए भी अधिकाधिक ढुलमुलपन दिखा रहे हैं तथा वे जापान का प्रतिरोध और कम्युनिस्ट पार्टी का विरोध एक साथ करने की दुरंगी चाल चल रहे हैं। बड़े पूंजीपतियों के वर्ग के आत्मसमर्पणवादियों के प्रति हम शत्रु जैसा व्यवहार करते हैं और दृढ़ता से कुचलने की नीति अपनाते हैं। बड़े पूंजीपतियों के वर्ग के कट्टरतावादियों के प्रति हम एक क्रांतिकारी दोहरी नीति अपनाते हैं : एक तरफ तो हम उसके साथ संश्रय कायम करते हैं क्योंकि वे अभी तक जापान का प्रतिरोध कर रहे हैं, और हमें उनके और जापानी साम्राज्यवाद के बीच के अंतरविरोधों का

फायदा उठाना चाहिए, लेकिन दूसरी तरफ हम उनके खिलाफ दृढ़ता से संघर्ष करते हैं। क्योंकि वे एक ऐसी कम्युनिस्ट–विरोधी और जन–विरोधी,दमनकारी नीति अपनाते हैं। जो जापान प्रतिरोध और एकता की जड़ काटती है। ऐसे संघर्ष चलाए बिना जापान–प्रतिरोध और एकता दोनों को नुकसान पहुंचेगा।'' (माओ, ' चीनी क्रांति और चीनी कम्युनिस्ट पार्टी ',वही, ग्रंथ–2, पृष्ठ–563–564)

इस काल के बारे में सार–संकलन करते हुए माओ ने कहा थाः

''दलाल पूंजीपति वर्ग हमेशा ही साम्राज्यवाद का पालतू कुत्ता होता है और क्रांति के प्रहार का निशाना होता है। दलाल–पूंजीपति वर्ग के विभिन्न ग्रुपों का ताल्लुक अमरीका, बरतानियां और फ्रांस जैसे विभिन्न साम्राज्यवादी देशों के इजारेदार पूंजीपतियों के ग्रुपों से होता है। विभिन्न दलाल ग्रुपों के खिलाफ संघर्ष करते समय साम्राज्यवादी देशों के बीच के अंतरविरोधों का फायदा उठाना बहुत जरुरी है, पहले उनमें से एक से निपट लिया जाय और केवल तात्कालिक मुख्य दुश्मन पर ही प्रहार किया जाय। उदाहरण के लिए अतीत काल में चीन के दलाल पूंजीपति वर्ग में बरतानियां–परस्त, अमरीका–परस्त और जापान–परस्त ग्रुप शामिल थे। जापानी–आक्रमण–विरोधी युद्ध के दौरान हमने एक पक्ष में बरतानियां व अमरीका तथा दूसरे पक्ष में जापान के बीच के अंतरविरोधों का फायदा उठाया तथा पहले जापानी आक्रमणकारियों को और उन पर निर्भर दलाल ग्रुप को धाराशाई कर दिया। उसके बाद हम अमरीका व बरतानियां की आक्रमणकारी शक्तियों पर प्रहार करने लगे और अमरीका–परस्त व बरतानिया–परस्त दलाल ग्रुपों को धाराशाई करने में लग गये।...'' (माओ, ' हमारी पार्टी के इतिहास के कुछ अनुभव ', संकलित रचनाएं, ग्रंथ–5, प्रोग्रेसिव पब्लिकेशन, दिल्ली 2001, पृष्ठ–304)

उपरोक्त उद्धरण संदेह की कोई गुंजाइश नहीं छोड़ते। जापानी साम्राज्यवादियों के चीन पर आक्रमण के दौरान अमरीका–परस्त और ब्रिटिश–परस्त दलाल बुर्जुआ ने पाला बदल कर जापानियों का दामन नहीं थामा। इसके उल्टे वे अपने मालिकों–अमेरिकी और ब्रिटिश साम्राज्यवादियों–की ऊंगलियों पर नाचते हुए जापानी साम्राज्यवादियों का प्रतिरोध कर रहे थे।

वैसे थोड़ा गहराई से देखने पर पता चलेगा कि दलाल की माओ की अवधारणा में ही यह बात निहित है कि दलाल बुर्जुआ अपना मालिक नहीं बदल सकते और न ही वे उससे स्वतंत्र हो सकते हैं। दलाल बुर्जुआ वर्ग को साम्राज्यवाद पैदा करता है। यह वर्ग साम्राज्यवाद पर पूरी तरह निर्भर होता है। लेकिन यह उत्पत्ति और निर्भरता अमूर्तता में नहीं होती। साम्राज्यवादी इजारेदार पूंजी अपना माल बेचने के लिए जो ताना–बाना खड़ा करती है, ये दलाल पूंजीपति उसी की पैदाइश होते हैं और उसी के अभिन्न अंग होते हैं। यह वित्तीय, व्यापारिक और औद्योगिक ताना–बाना न तो रातों–रात खड़ा होता है और न ही रातों–रात बदल सकता है। इसी तरह जो पूंजीपति इस संपूर्ण ताने–बाने के तहत पैदा होते हैं और जिसके अभिन्न अंग होते हैं, वे इस ताने–बाने से जब चाहें तब अपनी इच्छा से मुक्त नहीं हो सकते। यदि वे ऐसा करते हैं तो यह उनके इस ताने–बाने से सापेक्षिक अलगाव का,सापेक्षिक स्वतंत्रता का द्योतक होता है। लेकिन तब यह उसके दलाल न होने का भी द्योतक होता है।

एक ही औपनिवेशिक या अर्ध–औपनिवेशिक देश में होने के बावजूद अलग–अलग साम्राज्यवादी देशों की इजारेदार पूंजी का ताना–बाना अलग–अलग होता है। ये एक दूसरे से क्रिया–प्रतिक्रिया भी करते हैं, फिर भी अलग–अलग होते हैं। इसीलिए एक ताने–बाने में पैदा हुए पूंजीपति उसी के अभिन्न अंग होते हुए उसी के साथ घटते–बढ़ते हैं। वे एक साम्राज्यवादी देश की इजारेदार पूंजी का ताना–बाना छोड़कर दूसरे में नहीं जा सकते। इसीलिए वे मालिक नहीं बदल सकते।

कोई यह तर्क दे सकता है कि साम्राज्यवाद के ताने–बाने में पैदा होने के बावजूद दलाल पूंजीपति वर्ग का अपना अलग अस्तित्व होता है। इसीलिए कभी ऐसा हो सकता है कि किसी खास स्थिति में या मात्रात्मक विकास के गुणात्मक विकास में तबदील हो जाने के कारण दलाल पूंजीपति अपने को साम्राज्यवाद से अलग कर ले। लेकिन यह कहने का तो यही मतलब हुआ कि दलाल पूंजीपति अब साम्राज्यवाद पर निर्भर नहीं रहा,कि वह स्वतंत्र हो गया है। यानि वह दलाल नहीं रह गया है। तब इसे दलाल मानना ही छोड़ देना होगा।

वैसे हमारे यहां दलाल बुर्जुआ की यांत्रिक अवधारणा के चलते इस संभावना का प्रश्न उठाया ही नहीं जाता। यह मानकर चला जाता है कि दलाल बुर्जुआ हमेशा दलाल बना रहेगा। और इसलिए जब दलाल बुर्जआ कुछ ऐसा करना शुरू कर देता है जो दलाल के चरित्र के अनुरुप नहीं होता तो यह यांत्रिक अवधारणा ढेरों विसंगतियों का शिकार हो जाती है। सच्चाई यह है कि अपरिवर्तनीय दलाल बुर्जआ की अवधारणा गैर–मार्क्सवादी, गैर–द्वन्द्ववादी है। ऐसा सोचने का मतलब यह है कि साम्राज्यवाद और दलाल बुर्जआ का संबंध ऐसा संबंध है जो अंतरविरोधों से मुक्त है। यह पूर्णतया गैर द्वन्द्ववादी है। दुनिया की हर चीज की तरह साम्राज्यवाद और दलाल बुर्जुआ का संबंध भी अंतरविरोधों से युक्त है। इस अंतरविरोध के दो पहलू हैं। इसका प्रधान पहलू है साम्राज्यवाद और दलाल बुर्जुआ के हितों की अभिन्नता। इसीलिए कहा जाता है कि दलाल बुर्जुआ के

हित साम्राज्यवाद से अभिन्न होते हैं। लेकिन इसका गौण पहलू भी है। यह है साम्राज्यवाद और दलाल बुर्जुआ के हितों में टकराव लेकिन किसी भी चीज का चरित्र उसमें निहित अंतरविरोध के प्रधान पहलू से निर्धारित होता है इसीलिए आम तौर पर दलाल बुर्जुआ और साम्राज्यवाद के हितों की अभिन्नता की बात की जाती है। परन्तु हर चीज गतिमान और परिवर्तनशील होने के चलते किसी स्थिति में ऐसा हो सकता है कि साम्राज्यवाद और दलाल बुर्जुआ के संबंध का प्रधान पहलू गौण बन जाय और गौण पहलू प्रधान। तब इस स्थिति में इनके सम्बन्ध में टकराव का पहलू प्रधान बन जायेगा। लेकिन ऐसा हो जाने पर इस संबन्ध का चरित्र बदल जायेगा। तब दलाल–बुर्जुआ दलाल नहीं रह जायेगा। उसे दलाल कहना गलत होगा। वैसे दलाल बुर्जुआ और राष्ट्रीय बुर्जुआ में फर्क ही यही है कि साम्राज्यवाद और स्थानीय बुर्जुआ के सम्बन्ध में हितों की अभिन्नता का पहलू प्रधान है या टकराव का। दोनों ही मामलों में दूसरा पहलू गौण रूप में विद्यमान रहता है। हमारे कम्युनिस्ट क्रांतिकारी आंदोलन की दिक्कत ही यह है कि यह दोनों ही मामलों में गौण पहलू को नजरअंदाज करता है और इस सम्बन्ध में, इस अंतरविरोध में किसी गति और परिवर्तन की संभावना से इनकार करता है।

V

पूंजीवाद का विकास

अब हम एक आखिरी बात को लेते हैं। दलाल बुर्जुआ की हमारे यहां प्रचलित अवधारणा का एक पहलू यह भी है कि जब तक दलाल बुर्जुआ इन देशों में सत्तानशीन है तब तक इनमें पूंजीवाद का विकास नहीं हो सकता। पूंजीवादी उत्पादन–संबंधों का जो भी विकास होगा वह आधा–अधूरा होगा तथा वह कभी प्रधान उत्पादन संबन्ध नहीं बनेगा। नतीजतन यह समाज अर्ध–सामंती बना रहेगा।

कहने की जरूरत नहीं कि यह अवधारणा भी दलाल बुर्जुआ और राष्ट्रीय बुर्जुआ के बारे में कही गई बातों को जड़सूत्रवादी ढंग से ग्रहण करने के कारण पैदा हुयी है। लेकिन इससे पहले कि हम इस संबंध में माओ के कुछ कथनों को देखें,हम यहां लेनिन, स्टालिन और कौमिंटर्न की कुछ प्रस्थापनाओं को उद्धृत करेंगे।

''पूंजीवाद का विकास सबसे अधिक तेजी के साथ उपनिवेशों में और समुद्र पार के देशों में हो रहा है''। (लेनिन, ' साम्राज्यवाद पूंजीवाद की चरम अवस्था ', दस खंडिय संकलित रचनायें, प्रगति प्रकाशन, मास्को, 1982, खण्ड–5, पृष्ठ–322)

''पूंजी निर्यात उन देशों में पूंजीवादी विकास को प्रभावित करता है,उसकी गति को बहुत तेज कर देता है जहां निर्यातित पूंजी जाती है। इस तरह पूंजी निर्यात से पूंजी निर्यातकारी देशों का विकास किसी हद तक रूक सकता है। लेकिन वैसा केवल सारी दुनिया में पूंजीवाद के आगे विकास के फैलाव तथा गहनता से ही हो सकता है।'' (वही,पृष्ठ–279)

''आगे, इसका मतलब यह है कि युद्ध के दौरान और उसके बाद औपनिवेशिक और निर्भर देशों में एक नौजवान स्थानीय पूंजीवाद पैदा हुआ और विकसित हुआ जो कि अब बाजारों में पुराने पूंजीवादी देशों से सफलतापूर्वक प्रतियोगिता कर रहा है और इस तरह बाजारों के लिए संघर्ष को तीव्र और जटिल बना रहा है।'' (J.V. Stalin, Political Report of CC to 16th Congress of CPSU(B), Collected Works, vol-12, page-254, अनुवाद हमारा)

''1914–8 के साम्राज्यवादी युद्ध और उसके बाद जारी साम्राज्यवाद के संकट– सबसे ऊपर यूरोपीय साम्राज्यवाद के संकट– ने उपनिवेशों पर बड़ी शक्तियों की आर्थिक पकड़ को कमजोर बना दिया है।....

''उपनिवेशों पर साम्राज्यवादी दबाव के ठीक इस कमजोर होने ने विभिन्न साम्राज्यवादी समूहों के बीच लगातार बढ़ती प्रतिद्वंद्विता के साथ मिलकर, औपनिवेशिक और अर्ध–औपनिवेशिक देशों में अंदरूनी पूंजीवादी विकास में मदद दी है; यह बड़ी शक्तियों के साम्राज्यवादी शासन की संकीर्ण और बाधक सीमाओं को पार कर गया है तथा यह प्रक्रिया अभी चल रही है। ...'' पृष्ठ–384, अनुवाद हमारा)

"उपनिवेशों को वित्त पूंजी का निर्यात वहां पूंजीवादी सम्बंधों के विकास को त्वरित करता है। वह हिस्सा जो उत्पादन में निवेशित होता है कुछ हद तक औद्योगिक विकास को त्वरित करता है; लेकिन यह उन तरीकों से नहीं होता जो स्वतंत्रता बढ़ाते हैं; इसके मुकाबले इच्छा इस बात की होती है कि औपनिवेशिक अर्थव्यवस्था की साम्राज्यवादी देश की वित्त पूंजी पर निर्भरता को मजबूत बनाया जाय।.. "('Thesis on the Revolutionary Movement in Colonial and Semi-Colonial Countries' Adopted by the Sixth Comintern Congress, वही, Vol-2, पृष्ठ–535, अनुवाद हमारा)

उपरोक्त उद्धरण स्पष्ट तौर पर औपनिवेशिक और अर्ध–औपनिवेशिक देशों में साम्राज्यवादी वित्त पूंजी के निर्यात से होने वाले पूंजीवादी विकास को चिन्हित करते हैं। जहां यह सही है कि साम्राज्यवादी पूंजी इन देशों में सामंती तत्वों से गठजोड़ कर लेती है और उन्हें अपने हित में बनाये रखती है, वहीं यह बात भी सही है कि वह यहां अपनी गति के गौण उत्पाद के तौर पर पूंजीवादी उत्पादन संबंधों का भी विकास करती है। साम्राज्यवादी पूंजी की इन देशों में गति के प्रधान पहलू को ध्यान में रखने के साथ–साथ उसके गौण पहलू को भी नजरअंदाज नहीं करना चाहिए।

अब आइये देखें कि स्वयं चीन के बारे में माओ ने इस पूंजीवादी विकास को किस रूप में देखा।

"...चीन का सामंती समाज लगभग तीन हजार साल तक रहा। ***विदेशी पूंजीवाद की घुसपैठ के कारण ही उन्नीसवीं सदी के मध्य में चीनी समाज में बड़े–बड़े परिवर्तन हुए।***

"चूंकि चीन के सामंती समाज में तिजारती माल वाली अर्थव्यवस्था का विकास हो चुका था, इसलिए उसमें पूंजीवाद के बीज निहित थे। अगर विदेशी पूंजीवाद का असर न भी पड़ता,तो भी चीन अपने आप धीरे–धीरे पूंजीवादी समाज में विकसित हो जाता। ***विदेशी पूंजीवाद की घुसपैठ ने इस प्रक्रिया को तेज कर दिया।*** *विदेशी पूंजीवाद ने चीन की सामाजिक अर्थव्यवस्था को छिन्न–भिन्न करने में महत्वपूर्ण भूमिका अदा की। उसने एक तरफ तो चीन की आत्मनिर्भरता वाली प्राकृतिक अर्थव्यवस्था की बुनियादें खोखली कर दी और शहरों की दस्तकारियों व किसानों की घरेलू दस्तकारियों को तबाह कर डाला, तथा दूसरी तरफ शहरों और देहातों में तिजारती माल वाली अर्थव्यवस्था के विकास की रफ्तार को बढ़ा दिया।*

" इस हालात ने न सिर्फ चीन की सामंती अर्थव्यवस्था की बुनियादों को छिन्न–भिन्न करने की भूमिका अदा की, ***बल्कि चीन में पूंजीवादी उत्पादन के विकास के लिए कुछ वस्तुगत परिस्थितियों और संभावनाओं को भी जन्म दिया।*** *प्राकृतिक अर्थव्यवस्था की तबाही ने पूंजीवाद के लिए तिजारती माल की मण्डी पैदा कर दी तथा भारी संख्या में किसानों व दस्तकारों के दिवालिएपन ने पूंजीवाद के लिए श्रम–शक्ति का बाजार तैयार कर दिया।*

"दरअसल कुछ व्यापारियों, जमींदारों और नौकरशाहों ने विदेशी पूंजीवाद से प्रभावित होकर और सामंती आर्थिक ढांचे में कुछ दरारें पड़ जाने के कारण, उन्नीसवीं शताब्दी के उत्तरार्ध में, आज से साठ साल पहले, आधुनिक उद्योग में पूंजी लगाना शुरू कर दिया था। उन्नीसवीं सदी के अन्त में और बीसवीं शताब्दी के प्रारम्भ में, यानि लगभग चालीस साल पहले,चीन के राष्ट्रीय पूंजीवाद ने आगे की ओर अपना पहला कदम रखा। फिर तकरीबन बीस साल पहले, यानि ***प्रथम साम्राज्यवादी विश्व युद्ध के दौरान चूंकि योरप व अमेरिका के साम्राज्यवादी देश युद्ध में उलझे हुए थे और उन्होंने चीन पर अपना उत्पीड़नकारी शिकंजा अस्थाई रूप से ढीला कर दिया था,*** *चीन के राष्ट्रीय उद्योग ने, मुख्य रूप से कपड़ा उद्योग और आटा–पिसाई उद्योग ने और अधिक तरक्की की।.....*

"मगर पूंजीवाद का उपरोक्त उद्भव और विकास चीन में साम्राज्यवाद की घुसपैठ के बाद होने वाले परिवर्तन का महज एक पहलू है। इसका एक अन्य सहगामी और अवरोधकारी पहलू भी है, अर्थात चीनी पूंजीवाद के विकास को रोकने के लिए साम्राज्यवादियों और चीन की सामंती शक्तियों की आपसी सांठ–गांठ।

"चीन में अतिक्रमण करने वाली साम्राज्यवादी ताकतों का उद्देश्य यह कदापि नहीं है कि सामंती चीन को पूंजीवादी चीन में बदल दिया जाय। इसके विपरीत उनका उद्देश्य चीन को अपना अर्ध–उपनिवेश अथवा उपनिवेश बनाना है।" (माओ, ' चीनी क्रांति और चीनी कम्युनिस्ट पार्टी ', वही, ग्रंथ–2, पृष्ठ 543–546, जोर हमारा)

"(1) ***सामंती काल की आत्मनिर्भरता वाली प्राकृतिक अर्थव्यवस्था की बुनियादें नष्ट हो चुकी हैं,*** *लेकिन जमींदार वर्ग द्वारा किसानों का शोषण,जो सामंती शोषण व्यवस्था का आधार था,न सिर्फ ज्यों का त्यों बना हुआ है बल्कि उसने दलाल–पूंजी व सूदखोर–पूंजी के शोषण के साथ जुड़कर स्पष्ट रूप से चीन के सामाजिक–आर्थिक जीवन में अपना प्रभुत्व स्थापित कर लिया है।*

"(2) ***राष्ट्रीय पूंजीवाद का कुछ हद तक विकास हो चुका है और चीन के राजनीतिक और सांस्कृतिक जीवन में उसने काफी महत्वपूर्ण भूमिका अदा की है,*** *लेकिन वह चीन की सामाजिक अर्थव्यवस्था का मुख्य रुप नहीं*

बन पाया; *वह बहुत कमजोर है और उसने अधिकांश रूप से अलग–अलग मात्रा में,विदेशी साम्राज्यवाद और घरेलू सामंतवाद से नाता जोड़ा हुआ है।''* (वही, पृष्ठ –550, जोर हमारा)

उपरोक्त उद्धरण साफ दिखाते हैं कि चीन में साम्राज्यवादी घुसपैठ ने वहां की सामंती अर्थव्यवस्था की बुनियादी नष्ट कर दी,वहां पूंजीवाद की पैदाइश की प्रक्रिया को तेज कर दिया तथा पूंजीवाद का कुछ हद तक विकास किया। निश्चय ही साम्राज्यवाद ने चीन में पूंजीवादी उत्पादन संबंधों का विकास करने के उद्देश्य से यह सब नहीं किया। उसका उद्देश्य तो महज चीन पर कब्जा करना और उसे लूटना था। लेकिन इसके लिए साम्राज्यवाद ने कुछ भी नहीं किया,उसने अपने गौण उत्पाद के तौर पर वहां पूंजीवादी विकास को जन्म दिया।

जब माओ चीनी समाज का विश्लेषण कर रहे थे तब तक पूंजीवाद चीनी अर्थव्यवस्था का मुख्य रूप नहीं बना था। लेकिन क्या यह हमेशा के लिए रहने वाला था?साम्राज्यवादी लूट की गौण गति के चलते जो पूंजीवादी विकास हो रहा था वह क्या सदा के लिए गौण रहने वाला था?

इसी से जुड़ा सवाल यह है कि इन समाजों में साम्राज्यवाद के प्रवेश के साथ पूंजीवाद का जो विकास हुआ था क्या वह हमेशा मात्रात्मक ही बना रहना था। यानि सामंती से अर्ध–सामंती बन जाने के बाद क्या समाज यहीं पर ठहरा रहने वाला था? क्या वह आगे बढ़कर अर्ध–सामंती से मूलतः पूंजीवादी नहीं बन सकता था? सवाल फिर यहीं आ जाता है कि क्या मात्रात्मक विकास गुणात्मक विकास में तबदील नहीं हो सकता था? वह भी द्वितीय विश्व युद्ध और उसके बाद की स्थितियों में?

द्वन्द्ववादी दृष्टिकोण से इन सवालों का जवाब केवल नहीं ही हो सकता है। द्वितीय विश्व युद्ध के बाद उपनिवेशों को मिली आजादी चाहे जितनी भी नकली क्यों न हो (हालांकि हम इन्हें नकली नहीं मानते),इनके लिए स्थितियां 1850–1950 के दौर से ज्यादा अनुकूल थीं। ऐसे में इन देशों में जो पूंजीवादी विकास हुआ वह पहले के दौर के मुकाबले निश्चित तौर पर बहुत ज्यादा था।

ऐसे में इस बात को न मानना हठधर्मिता ही है कि इन तीव्र मात्रात्मक परिवर्तनों ने गुणात्मक परिवर्तनों को जन्म नहीं दिया है। यदि उसी गति से भी मात्रात्मक परिवर्तन होता रहे तब भी एक समय ऐसा आयेगा जब मात्रात्मक परिवर्तन गुणात्मक परिवर्तन में तबदील हो जायेगा। मात्रा गुण में बदल जायेगी। इसे न मानना द्वन्द्ववाद का निषेध है।

इसीलिए यह कहना कि क्रमिक सुधारवादी परिवर्तन गुणात्मक परिवर्तन को जन्म नहीं देगा,कि इन समाजों में पूंजीवादी उत्पादन मुख्य रूप कभी नहीं बनेगा, गैर द्वन्द्ववादी है। ऐसा कहना प्रकारान्तर से यही कहना है किसी गति का प्रधान पक्ष हमेशा प्रधान बना रहेगा और गौण पक्ष हमेशा गौण। यदि कहीं कोई गति है ही नहीं तो अलग बात है। यदि कोई गति है तो वक्त के साथ उसका प्रधान पक्ष गौण में और गौण पक्ष प्रधान में तबदील हो जायेगा। इसे सैद्धान्तिक तौर पर नकारना गैर–द्वन्द्ववादी होना है। यहां केवल यही किया जा सकता है कि वस्तुगत यथार्थ को जांच–परख कर पता लगाया जाय कि पहले गौण पक्ष प्रधान बना है या नहीं। इसके बदले इसकी संभावना को ही खारिज कर देना सिरे से गैर–मार्क्सवादी होना है।

इस बारे में माओ की साफ राय है : *''आध्यात्मवादी विश्व–दृष्टिकोण या भौंडे विकासवाद का विश्व दृष्टिकोण वस्तुओं को अलग–थलग,स्थिर और एकांगी दृष्टि से देखता है। यह दृष्टिकोण विश्व की तमाम वस्तुओं, उनके रूपों तथा उनकी किस्मों को हमेशा के लिए एक दूसरे से अलग तथा अपरिवर्तनीय मानता है। यदि कोई परिवर्तन हो,तो उसका अर्थ केवल परिमाण में घटती या बढ़ती, अथवा स्थानांतरण है। इसके अलावा ऐसी घटती या बढ़ती अथवा स्थानांतरण का कारण वस्तुओं के अन्दर नहीं, वरन उनके बाहर रहता है,अर्थात बाह्य शक्तियां ही उन्हें प्रेरित करती हैं। आध्यात्मवादियों का मत है कि विश्व में विभिन्न प्रकार की सभी वस्तुओं तथा उनकी विशिष्टताओं में,उनके अस्तित्व में आने के समय से कोई परिवर्तन नहीं हुआ है। बाद में यदि कोई परिवर्तन हुआ है,तो वह केवल परिमाण में बढ़ती या घटती ही है। उनका यह दावा है कि हमेशा कोई वस्तु केवल खुद उसी वस्तु के रूप में बार–बार प्रजनित हो सकती है और किसी भिन्न वस्तु में नहीं बदल सकती...''* (माओ, ' अंतरविरोध के बारे में ', वही, ग्रंथ–1 पृष्ठ 557–558)

''....वस्तुगत पदार्थों में परस्पर विरोधी पहलुओं की एकता या एकरूपता कभी भी मृत और जड़ चीज नहीं होती,बल्कि सजीव,परिस्थितिबद्ध, परिवर्तनशील,अस्थाई और सापेक्ष चीज होती है, सभी परस्पर विरोधी पहलू,एक विशेष परिस्थिति में, अपने विपरीत पहलुओं में बदल जाते हैं।....केवल प्रतिक्रियावादी शासक वर्ग,चाहे वे वर्तमान के हों या अतीत के,और उनकी चाकरी करने वाले आध्यात्मवादी ही,विपरीत तत्वों को सजीव,परिस्थितिबद्ध,परिवर्तनशील और एक दूसरे में बदल जाने वाली वस्तुओं के

रूप में नहीं देखते बल्कि मृत और जड़ मानते हैं,तथा आम जनता को धोखा देने के लिए इस गलत दृष्टिकोण का प्रचार करते हैं और इस तरह अपने शासन को कायम रखने की कोशिश करते हैं।...'' (वही, पृष्ठ–610– 611)

जैसा कि लेनिन,स्टालिन और माओ सभी की बातों से स्पष्ट है, औपनिवेशिक,अर्ध–औपनिवेशिक देशों में साम्राज्यवादी पूंजी की घुसपैठ एक साथ दो चीजें करती है। प्रधानतः यह वहां तबाही लाती है,उत्पादक शक्तियों को नष्ट करती है,वहां स्वस्थ विकास में बाधा पहुंचाती है तो अपनी गति के गौण उत्पाद के रूप में वहां पूंजीवादी उत्पादन संबन्धों का विकास भी करती है। शुरू में इन समाजों में सामंती उत्पादन संबन्ध प्रधान होते हैं जबकि पूंजीवादी उत्पादन संबंध गौण। यदि साम्राज्यवादी पूंजी की गति जारी रही तो कभी न कभी ऐसा वक्त आयेगा जब समाज का गौण पक्ष प्रधान हो जायेगा। यानि साम्राज्यवादी शोषण–उत्पीड़न के जारी रहते हुए वहां पूंजीवादी उत्पादन संबन्ध विकसित हो जायेंगे। इन देशों में पूंजीवादी उत्पादन–संबन्ध ही प्रधान उत्पादन संबन्ध बन जायेंगे। तब साम्राज्यवादी शोषण–उत्पीड़न इसी पूंजीवादी उत्पादन संबंध को आधार बनाकर होगा। निश्चित तौर पर यह पूंजीवाद बेहद असंतुलित और विकृत होगा लेकिन वह होगा पूंजीवाद ही।

यहां ध्यान रखने की बात है कि यह बहस अमूर्तता में नहीं हो रही है। यहां संदर्भ बहुत साफ है। पहले के औपनिवेशिक देशों में आज पूंजीवादी उत्पादन–संबंध प्रधान बन गये हैं कि नहीं, बहस इस बात पर है। हमारे कम्युनिस्ट क्रांतिकारी आंदोलन में इन देशों को अर्ध–औपनिवेशिक या नव–औपनिवेशिक मान लिया जाता है और फिर माओ का मनमाना हवाला देकर यह कहा जाता है कि जब तक इन देशों में नवजनवादी क्रांति नहीं होगी,तब तक ये अर्ध–औपनिवेशिक या नव–औपनिवेशिक बने रहेंगे। और जब तक ये अर्ध–औपनिवेशिक या नव–औपनिवेशिक बने रहेंगे तब तक इनमें पूंजीवादी उत्पादन–संबंधों का विकास नहीं हो सकता तथा क्रांति की मंजिल नव–जनवादी क्रांति ही बनी रहगी। यह चक्र में घूमने वाली स्वतः समर्थित तर्क प्रणाली है। हम यहां विरोधी तर्क यह दे रहे हैं कि माओ के कथनों का यह निष्कर्ष मनमाना निष्कर्ष है। इसके बदले माओ के कथनों का सही निष्कर्ष यही है कि एक लम्बे समय में मात्रा गुण में बदल जायेगी,इन देशों में पूंजीवादी उत्पादन संबंध गौण से प्रधान बन जायेंगे । यह उन स्थितियों में एक मात्र सही निष्कर्ष होगा जो द्वितीय विश्व युद्ध के बाद दुनिया में व इन देशों में विद्यमान रहीं। चाहे कोई इन देशों को अर्ध–औपनिवेशिक या नव–औपनिवेशिक ही क्यों न कहता रहे।

यहीं पर यह भी रेखांकित करने की जरुरत है कि इतने लम्बे समय में और खासकर 1945 के बाद की स्थितियों में पूंजी द्वारा इन देशों को अपने कब्जे में ले लेने की बात से इंकार करने का मतलब पूंजी के मुकाबले सामंती अवशेषों की ताकत को बहुत बढ़ा–चढ़ा कर पेश करना है। पूंजी की ताकत को कम करके आंकने की ऐसी गलती हमारे शिक्षकों ने नहीं की थी । 'कम्युनिस्ट पार्टी का घोषणा पत्र' के समय से ही कम्युनिस्ट पूंजी की दीमक की तरह गैर–पूंजीवादी सम्बन्धों को चाट जाने वाली ताकत से परिचित रहे हैं । सोवियत संघ व चीन समेत सभी समाजवादी देशों में पूंजीवादी पुनर्स्थापना ने भी पूंजी की ताकत को प्रकारान्तर से बताया कि जब तक इसे समूल नष्ट नहीं कर दिया जाता तब तक यह अपने से आगे की व्यवस्था यानि समाजवादी व्यवस्था को भी वक्ती तौर पर परास्त कर देने की क्षमता रखती है। इसीलिए पूंजी की ताकत को कम करके आंकने की गलती कम्युनिस्ट नहीं कर सकते। खासकर वे इसके मुकाबले सामंती अवशेषों की ताकत को इस तरह नहीं बढ़ा–चढ़ा कर देख सकते कि इतने समय बाद भी इन सभी देशों में अर्ध–सामंती सम्बन्ध प्रधान बने हुए हैं। सच्चाई यह है कि यदि अर्ध–सामंती संबंध इन देशों में अभी बचे हुए हैं तो वह पूर्णतया पूंजी के मातहत और अक्सर तो इस कारण कि पूंजी अपने दूरगामी और फौरी दोनों हितों के लिए उनका इस्तेमाल कर रही है।

जब माओ चीनी क्रांति की रणनीति तय करने के लिए चीनी समाज का विश्लेषण कर रहे थे तब औपनिवेशिक, अर्ध–औपनिवेशिक देशों के इस दूरगामी भविष्य की बात न करना स्वाभाविक था। कोई भी क्रांतिकारी इस तरह की दूरगामी सुधारवादी संभावना को परे लगाकर क्रांति के लिए रणनीति तय करेगा लेकिन जब यह दूरगामी संभावना अतीत का हिस्सा बन चुकी हो और वह हमारे वर्तमान की रणनीति को निर्धारित कर रही हो तो हम उसे नहीं नकार सकते। ऐसा करना अतीत में ही ठहरे रहना होगा। अतीत में हुए इन सुधारवादी परिवर्तनों के परिणामों को नकारने का मतलब वर्तमान में सुधारवादी बन जाना होगा। जब पूंजीवादी सम्बन्धों को समाप्त करने का वक्त आ गया हो तब उनके विकास के लिए जमीन तैयार करने की रणनीति बनाना और उस पर चलना सुधारवाद के अलावा कुछ नहीं होगा।

VI

भारतीय पूंजीपति वर्ग

हमारे कम्युनिस्ट क्रांतिकारी आंदोलन में माओ की बातों को जड़ सूत्र में बदलने और फिर उनसे मनमाना निष्कर्ष निकालने का प्रयास इसलिए किया जाता है कि भारत में नव–जनवादी क्रांति की रणनीति को सही साबित किया जा सके। तथ्यों को झुठलाते हुए या कुछ लेते–कुछ छोड़ते हुए यह मान लिया जाता है कि भारत का पूंजीपति वर्ग इजारेदार और गैर–इजारेदार में बंटा हुआ है। इजारेदार पूंजीपति वर्ग दलाल है और गैर इजारेदार पूंजीपति वर्ग राष्ट्रीय। 15अगस्त 1947 के बाद ऊपरी तौर पर दलाल पूंजीपति वर्ग (सामंती तत्वों के साथ)सत्तानशीन हो गया जबकि वास्तविक सत्ता साम्राज्यवादियों के हाथों में बनी रही । तब से यही गठजोड़ सत्ता में है। चूंकि इसके सत्तानशीन रहते देश में पूंजीवादी उत्पादन सम्बन्धों का विकास नहीं हो सकता, इसलिए आज तक भारत अर्धसामंती–अर्धऔपनिवेशिक (या कुछ के लिए नव औपनिवेशिक) बना हुआ है। ऐसे में क्रांति की मंजिल नव–जनवादी बनती है। सब कुछ वैसे ही जैसे मुक्ति के पहले चीन में था। व्यापक अनुभवों के सार–संकलन और गहन विश्लेषण के नाम पर जो कुछ प्रस्तुत किया जाता है वह और कुछ नहीं माओ की रचनाओं से शब्दशः उतारे गये पैराग्राफ होते हैं। जड़सूत्रवाद यहीं तक ही पहुंचा सकता है।

लगातार 30–35 सालों से बातें करते हुए भी हमारा कम्युनिस्ट क्रांतिकारी आंदोलन भारत में राष्ट्रीय बुर्जुआ को नहीं खोज सका है और न ही उसकी किसी राजनीतिक पार्टी को। यह उसकी कल्पना में है। कुछ लोग यह कहते हैं कि क्रांति आगे बढ़ने पर यह उभर कर सामने आ जायेगा,अभी सुप्त पड़ा हुआ है। कुछ अन्य यह तर्क देते हैं कि भारत का गैर इजारेदार मध्यम और छोटा बुर्जुआ ही राष्ट्रीय बुर्जुआ है। लेकिन ये लोग यह नहीं बता पाते कि तब यह बड़े बुर्जुआ यानि दलाल बुर्जुआ से इस तरह गुंथा हुआ क्यों है, क्यों इनके बीच कोई बुनियादी अंतरविरोध नजर नहीं आते,कि क्यों बड़े दलाल बुर्जुआ की राजसत्ता नवें दशक के अन्त तक छोटे व मध्यम पूंजीपतियों को बाहरी प्रतियोगिता से बचाती रही और क्यों देश के अन्दर छोटे बुर्जुआ को बीसियों तरीकों से संरक्षण व प्रोत्साहन देती रही।

जहां तक भारतीय शासक बुर्जुआ को दलाल घोषित करने की बात है (इसे दलाल घोषित करने के बाद सत्ता से बाहर कोई न कोई राष्ट्रीय बुर्जुआ अपने आप बच जाता है), यह दो जगहों से प्रस्थान करती है। पहले तो यह इसके साम्राज्यवाद से अलगाव और आजादी के बाद साम्राज्यवाद से स्वतंत्र व्यवहार को नजरअंदाज करती है या मालिक बदलने की बात कह कर पल्ला झाड़ लेती है। दूसरे, यह मानकर चलती है कि राष्ट्रीय बुर्जुआ के साम्राज्यवाद और सामंतवाद से कोई संबन्ध नहीं होते। यानि यदि किसी बुर्जुआ के साम्राज्यवाद और सामंतवाद से संबन्ध हैं और यह इनके साथ सुलह–समझौता करता रहता है तो वह राष्ट्रीय बुर्जुआ नहीं हो सकता। वह केवल दलाल बुर्जुआ ही हो सकता है। इस तरह भारतीय शासक बुर्जुआ की एक चारित्रिक विशेषता (साम्राज्यवाद से उसके सापेक्षिक अलगाव और स्वतंत्रता) को नजरअंदाज कर और दूसरी विशेषता (साम्राज्यवाद और सामंतवाद से सम्बंध) को दलाल का चरित्र मानकर भारतीय शासक वर्ग को दलाल घोषित कर दिया जाता है।

यहां माओ के लातिन अमेरिका के संदर्भ में 1956 के उस कथन की आड़ लेना बेमानी होगा कि *''साम्राज्यवादी उत्पीड़न के शिकार देशों में पूंजीपति वर्ग दो प्रकार का होता है–राष्ट्रीय पूंजीपति वर्ग और दलाल पूंजीपति वर्ग। क्या आपके देशों में भी पूंजीपति वर्ग दो प्रकार का है? शायद है।''*

यह तथ्यों से नहीं सूत्रों से प्रस्थान करना होगा। यहां यह भी ध्यान रखने की बात है कि माओ खुद ही ''शायद'' शब्द का इस्तेमाल करते हैं। दूसरे यह कि यह स्वाभाविक सी बात है कि इन देशों में कुछ साम्राज्यवाद–परस्त लोग होंगे। लेकिन देखने वाली बात यह होगी कि क्या ये लोग एक वर्ग के बतौर कोई मजबूत व प्रभावशाली धड़ा बनते हैं। इसके बाद यह कि क्या ये लोग सत्ता में हैं? यदि दलालों का यह हिस्सा पूंजीपति वर्ग का कोई मजबूत व प्रभावशाली हिस्सा नहीं बनता तथा सत्तानशीन नहीं होता है तो फिर इन दलालों का देश के विकास पर कोई महत्वपूर्ण प्रभाव नहीं पड़ेगा।

सच्चाई यह है कि आजादी से पहले के भारतीय बुर्जुआ को, 1920–30–40 के दशक के भारतीय बुर्जुआ को दलाल बुर्जुआ व राष्ट्रीय बुर्जुआ की उन श्रेणियों से परिभाषित नहीं किया जा सकता जो चीन में उपयुक्त थीं। भारतीय बुर्जुआ इस तरह दो हिस्सों में विभजित नहीं था। और न ही इसके अंदर अकेले दलाल के या राष्ट्रीय के गुण थे। वह मोटा–मोटी एक था और उसके अंदर दलाल व राष्ट्रीय दोनों के गुण थे। यदि झुकाव की ही बात करें तो यह राष्ट्रीय बुर्जुआ की ओर झुका हुआ था।

यह मोटा–मोटी एक ही भारतीय बुर्जुआ था जो दलाल व राष्ट्रीय दोनों के गुण लिये हुए था। यदि इसे परिभाषित करना हो तो वही शब्द उपयुक्त होगा जो इसे कौमिंटर्न ने दिया यानि राष्ट्रीय सुधारवादी बुर्जुआ।

यह राष्ट्रीय सुधारवादी बुर्जुआ संघर्ष–समझौते की रणनीति अपनाते हुए 1947 में सत्तानशीन हो गया। इसे उस समय सत्ता में सामंती तत्वों को भी हिस्सा देना पड़ा जबकि साम्राज्यवाद के साथ इसने घनिष्ठ संबंध बनाये रखे। लेकिन इसके साथ ही इसने सामंती तत्वों को पूंजीवादी बनाकर आत्मसात करने के लिए तथा साम्राज्यवादी दबाव को कम करने के लिए नीतियां बनाईं और द्वितीय विश्व युद्ध के बाद की वैश्विक परिस्थितियों में यह उसमें कामयाब भी रहा। संघर्ष–समझौते की अपनी रणनीति को जारी रखते हुए यह पिछले 55 सालों में अपने यहां पूंजीवादी उत्पादन संबंधों का विकास करने में कामयाब हो गया है। अब भारतीय समाज मूलतः पूंजीवादी समाज है।

पिछले 10–15 सालों में इसने साम्राज्यवाद से अपना पहले का सीमित अलगाव खत्म किया है और वैश्विक पूंजीवाद के साथ एकीकरण किया है। यह प्रक्रिया अभी चल रही है। इस एकीकरण के साथ यह साम्राज्यवादी पूंजीपति वर्ग का कनिष्ठ साझीदार बन गया है। यह वैश्विक अतिरिक्त मूल्य विनियोग में कनिष्ठ साझेदार की हैसियत से आज अपना हिस्सा बंटा रहा है।

भारतीय पूंजीपति वर्ग के साम्राज्यवाद से संबंध की बात करें तो यह पिछले सौ सालों में तीन चरणों से गुजरा है। इन तीनों चरणों में इस अंतरविरोध के प्रधान और गौण पहलुओं में न केवल परिवर्तन होते रहे हैं बल्कि वे एक दूसरे में भी बदले हैं। पहले चरण में साम्राज्यवाद के साथ संबंध में साम्राज्यवाद के साथ इसके हितों में अभिन्नता का,एकता का पहलू प्रधान था जबकि टकराव का पहलू गौण। उस समय भारत का पूंजीपति वर्ग अभी–अभी पैदा हुआ था, वह बहुत ज्यादा कमजोर था तथा साम्राज्यवाद पर निर्भर था। प्रथम विश्व युद्ध के थोड़ा पहले तथा खासकर प्रथम विश्व युद्ध के समय से इसमें परिवर्तन आना शुरू हुआ और 1920–30–40 के दशक में इसके क्रमशः मजबूत होते जाने के साथ इसके साम्राज्यवाद के साथ संबंधों में टकराव का पहलू क्रमशः बढ़ता गया और अंततः प्रधान बन गया। इस पहलू की प्रधानता ने अपनी अभिव्यक्ति 1947 के सत्ता हस्तान्तरण में पाई। आजादी के बाद टकराव का यह पहलू प्रधान बना रहा और 1960 के दशक के अंत तथा 1970 के दशक में यह अपेक्षाकृत ज्यादा मुखर हुआ। परन्तु 1980 के दशक से इसमें पुनः उल्टी गति शुरू हुई तथा टकराव के बदले हितों की अभिन्नता की स्थिति बढ़ने लगी। 1991 की नयी आर्थिक नीति से तो यह खुलकर प्रधान बन गई। 1990 के दशक से भारतीय पूंजीपति वर्ग और साम्राज्यवाद के सम्बन्ध में हितों की अभिन्नता प्रधान पहलू बन गई है। लेकिन हितों की अभिन्नता का अब प्रधान पहलू बन जाना बीसवीं सदी की शुरूआत की अभिन्नता से भिन्न है। यह चीज का पुरानी स्थिति में लौट आना नहीं है। यह चक्रीय गति नहीं है बल्कि कुंडलीकार है। यह निषेध का निषेध है लेकिन पुराने स्तर पर लौटना नहीं बल्कि गुणात्मक रुप से भिन्न स्तर पर पहुंचना है। अब भारत का पूंजीपति वर्ग तब की तरह आधारविहीन और कमजोर नहीं है। अब वह अपना आधार युक्त और शक्तिशाली है। इसलिए अब वह साम्राज्यवाद से एकीकरण कर साम्राज्यवाद का कनिष्ठ साझीदार बन रहा है उसका दलाल नहीं। हितों की वर्तमान अभिन्नता साम्राज्यवाद और उसके दलाल के हितों की अभिन्नता नहीं है बल्कि साम्राज्यवाद और उसके कनिष्ठ साझीदार के हितों की अभिन्नता है। यह एकीकरण एक दूरगामी प्रक्रिया है, क्षणिक और साम्राज्यवाद के दबाव में आत्मसमर्पण मात्र नहीं । साम्राज्यवाद के साथ भारतीय पूंजीपति वर्ग के सम्बन्ध में आगे अभिन्नता का यही पहलू प्रधान रहेगा तथा टकराव का पहलू गौण। परन्तु इक्कीसवीं सदी की शुरूआत में इन दोनों का ही चरित्र बीसवीं सदी की शुरूआत से गुणात्मक रूप से भिन्न है।

लेकिन साम्राज्यवाद और भारतीय पूंजीपति वर्ग के हितों की यह अभिन्नता या टकराव निरपेक्ष नहीं है । इन्हें निरपेक्ष रूप में देखना गलत होगा। यह चिरस्थापित बात है कि पूंजीपति वर्ग के भीतर और खासकर साम्राज्यवादी पूंजीपति वर्ग के भीतर संघर्ष लगातार जारी रहता है। समय–समय पर इसका रूप बदलता रहता है। कभी यह संघर्ष शत्रुतापूर्ण रूप ग्रहण कर लेता है तो कभी मित्रतापूर्ण लेकिन यह खत्म कभी नहीं होता। बल्कि यूं कहना ज्यादा ठीक होगा कि पूंजीपति वर्ग के बीच संघर्ष शाश्वत है जबकि समझौता तात्कालिक । हर समझौता पुराने संघर्ष की उपज होता है और नये संघर्ष की जमीन तैयार करता है।

वर्तमान एकीकरण से भारतीय पूंजीपति वर्ग अंतर्राष्ट्रीय पूंजीपति वर्ग का एकीकृत हिस्सा बन जा रहा है। यह समूचे अंतर्राष्ट्रीय पूंजीपति वर्ग का एक हिस्सा बन जा रहा है जिसमें साम्राज्यवादी पूंजीपति वर्ग प्रभुत्वकारी स्थिति में है। इस संपूर्ण में भारतीय पूंजीपति वर्ग की स्थिति कनिष्ठ साझेदार की है। इस अंतर्राष्ट्रीय पूंजीपति वर्ग के एक हिस्से के बतौर भारतीय पूंजीपति वर्ग भी संघर्ष–समझौते के उपरोक्त नियम से ही संचालित होगा। साम्राज्यवादियों के आपसी संघर्षों में या किसी एक साम्राज्यवादी देश से तीखे संघर्ष की स्थिति में भारतीय पूंजीपति वर्ग इसी कनिष्ठ साझेदार की हैसियत से व्यवहार करेगा,समूचे अंतर्राष्ट्रीय पूंजीपति वर्ग के एक छोटे से, कमजोर हिस्से की तरह न कि इस या उस साम्राज्यवादी धड़े के

दुमछल्ले की तरह। इसी तरह किसी–किसी स्थिति में तीसरी दुनिया के बाकी देशों के साथ मिलकर यह साम्राज्यवादियों के सामने खड़ा भी हो सकता है। इसी में इसकी सापेक्षिक राजनीतिक स्वतंत्रता भी निहित हैं।

भारतीय पूंजीपति वर्ग को यदि इस रूप में देखा जाय तो वे सारी चीजें स्पष्ट हो जाती हैं जो दलाल व राष्ट्रीय पूंजीपति वर्ग की श्रेणियां भारतीय पूंजीपति वर्ग पर आरोपित करने के कारण स्पष्ट नहीं हो पाती। ऐसा करने पर माओ की दलाल व राष्ट्रीय पूंजीपति वर्ग की श्रेणियों को तोड़ने–मरोड़ने और उनके मनमाने अर्थ निकालने की भी जरूरत नहीं पड़ती। तब जड़सूत्रों की भी जरूरत नहीं पड़ती और न ही गति और परिवर्तन से आंख चुराने की।

क्या अब वक्त नहीं आ गया है कि वैज्ञानिक विश्लेषण करने का लगातार दावा करने वाला भारतीय कम्युनिस्ट आंदोलन थोड़ा वैज्ञानिक हो जाय यानि तथ्यों से आखें चुराना बन्द कर दे?

❑ ❑ ❑